रसनिधि



सम्पादक
डॉ. भोलाशंकर व्यास
डॉ. त्रिभुवन सिंह



हिन्दी प्रचारक संस्थान
(व्यवस्थापक : कृष्णचन्द्र बेरी एण्ड सन्स)
सी० २१/३० पिशाचमोचन
१९७४] वाराणसी–२२१००१ [मूल्य ५·००

प्रकाशक
विजय प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो०. बॉक्स नं० १०६
वाराणसी–२२१००१

प्रथम संस्करण : १९६२–११००
द्वितीय संस्करण : २१००–१९७४

मूल्य : पाँच रुपये

मुद्रक
शंकर राम
शिव प्रेस,
ए. १०/२५ प्रह्लादघाट, वाराणसी–२२१००१

दो शब्द

प्रस्तुत संग्रह बी० ए० कक्षाओं के विद्यार्थियों को दृष्टि में रखकर किया गया है। कवियों एवं उनकी कविताओं का चुनाव करते समय इसका ध्यान रखा गया है कि मध्यकालीन प्रमुख कवि और उनकी प्रमुख कविताओं का इस संग्रह में प्रतिनिधित्व हो जाय। ऐतिहासिक क्रम के निर्वाह को अक्षुण्ण रखते हुए संग्रह को सरस एवं मर्मस्पर्शी बनाने के लिए पूर्ण सतर्कता बर्ती गई है। यही कारण है कि मध्यकालीन कविता में मेल खाने वाले कवि 'भारतेन्दु' और 'रत्नाकर' भी इस संकलन में उपस्थित मिलेंगे।

भूमिका भाग में हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त परिचय छात्रों की सुविधा के लिए दे दिया गया है, और परिशिष्ट के रूप में संकलित कविताओं की आवश्यक टिप्पणी भी इसलिए दे दी गई है कि अध्ययन-अध्यापन में सुविधा हो।



[illegible]

विषय-सूची



हिन्दी कविता का विकास

साहित्य किसी राष्ट्र या जाति की सांस्कृतिक अन्तर्यात्रा का अमूल्य धरोहर है। हिन्दी साहित्य में इस यात्रा का प्रारम्भ कब से हुआ? इस सम्बन्ध में विद्वान् एक मत नहीं हैं। हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में भी यह विवाद किसी मतैक्य का आधार निर्मित नहीं करता किन्तु लगभग सभी विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि आज हिन्दी का जो रूप विकसित हुआ है, वह एक लम्बे दौर की विकास-प्रक्रिया का परिणाम है। हिन्दी भारतवर्ष के एक विशाल प्रदेश की भाषा है। इसका प्रसार राजस्थान तथा पंजाब की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार के पूर्वी सीमांत तक तथा उत्तरप्रदेश की उत्तरी सीमा से लेकर मध्यप्रदेश के मध्य तक है। इस विशाल प्रदेश के अन्तर्गत आनेवाली साहित्यिक भाषा को हिन्दी के नाम से जाना जाता है।

हिन्दी साहित्य के सभी इतिहास लेखकों ने अपभ्रंश को हिन्दी की पूर्ववर्ती भाषा के रूप में स्वीकार किया है। निश्चय ही हिन्दी का आविर्भाव अपभ्रश भाषा से हुआ है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव हुआ। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने अपभ्रश को 'पुरानी हिन्दी' कहना अधिक उपयुक्त समझा है। राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रश की रचनाओं को हिन्दी की ही रचना मानी है। इसी प्रकार मिश्र बन्धुओं ने अपनी पुस्तक में अनेक अपभ्रश रचनाओं को स्थान दिया है और पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपभ्रश भाषा-साहित्य को हिन्दी साहित्य का पूर्व रूप माना है।

काल विभाजन

सामान्यतः होता यह है कि भाषा का आविर्भाव पहले होता है और साहित्य का बाद में। किसी भी साहित्य का प्रारम्भ तब से मानना चाहिए जब से उस भाषा में लिखित साहित्य उस भाषा-प्रदेश के निवासियों की सामूहिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने लग जाय। समाज से अलग साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती और साहित्य के अभाव में समाज का सांस्कृतिक जीवन निष्प्राण होता है। समाज में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं और उनमें सामान्य धरातल की सम्भावनाएँ भी कम रहती हैं। साहित्य

प्रवृत्तिविशेष या समष्टि प्रवृत्तियों को अपने में समावेष्ठित करता हुआ युग दर्पण का काम किया करता है। साहित्य में इन्ही प्रवृत्तियों में से एक का किसी एक युग में अधिक जोर रहता है और कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी भी होती हैं जो सामान्य रूप से प्रच्छन्न या प्रत्यक्ष आवरण में साहित्य का दामन हर युग में पकड़े रहती हैं। प्रवृत्तियों के आधार पर जब साहित्य-काल का विभाजन होता है तब प्रधान या युग की सर्वसामान्य प्रवृत्ति को ही आधार माना जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है--"वस्तुत: काल-प्रवृत्ति का निर्णय उस काल की मुख्य प्राणदायक वस्तु के आधार पर ही हो सकता है और वही नामकरण की भी उपयुक्त भित्ति है" आचार्य शुक्ल जी ने काल-विभाजन के दो आधारों को माना है; उनमें प्रथम है--विशेष ढंग की रचानाओं की प्रचुरता का आधार और दूसरा है—ग्रन्थों की प्रसिद्धि जिसमें किसी का लोक प्रवृत्ति की प्रतिध्वनि विद्यमान रहती है। हिन्दी साहित्य का काल विभाजन करते समय उसे आदि काल, मध्य काल और आधुनिक काल में विभक्त किया गया है। इनमें से आदिकाल का नामकरण अधिक विवादास्पद रहा है जिसे रामचन्द्र शुक्ल ने वीर गाथा काल, डॉ० रामकुमार वर्मा ने चारण काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बीजवपन काल तथा महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध-सामन्त युग के नाम से अभिहित किया है। मध्य काल को दो भागों में विभक्त किया गया है--पूर्वमध्य काल या भक्ति काल तथा उत्तरमध्य काल या रीति काल अथवा श्रृङ्गार काल। इसी प्रकार आधुनिक काल को हिन्दी गद्य काल भारतेन्दु काल, द्विवेदी काल और वर्तमान काल में बाँटा जा सकता है।

आदि काल--(१००० से १४०० तक)

इस युग का प्रारम्भ अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य के मिलन बिन्दु से होता है। स्पष्ट है कि इस युग में अपभ्रंश साहित्य की परम्पराओं की स्पष्ट छाप है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह संक्रमण का युग था। देश के छोटे-मोटे नरेश और उनके सामन्तों का चरमराता प्रशासनिक ढाँचा ढह चुका था। इस युग में सामन्ती अन्तर्कलह का आधार अधिकतर रूपवती कन्याएँ ही हुआ करती थीं। जिनको प्राप्त करने की होड़ में अपनी प्रतिष्ठा को गर्दन पर रखकर राजे-रजवाड़े आपस में युद्ध का शखनाद फूँका करते थे। इस प्रकार की परिस्थिति में राज दरबार में पलनेवाले कवि, चारण या भाट किसी रूपसी के सौन्दर्य का वर्णन कर अपने आश्रयदाता के शौर्य को प्रेरित करते हुए युद्ध की भूमिका का निर्माण करते थे

और अपने आश्रय-दाता की वीरता एवं सौन्दर्य का बखान करना उनका युगधर्म हो गया था। अतिशयोक्तियों एवं अतिरञ्जनाओं के माध्यम से वीरता का स्पष्ट वर्णन उस समय के काव्य में पाया जाता है किन्तु इस प्रकार इन वीरतापरक काव्यों में शृङ्गार की एक अजस्रधारा प्रच्छन्न रूप में प्रवाहित होती रही। शृङ्गार की सरिता काव्य के अन्तराल को सींचती रहती थी पर युद्ध की विभीषिका का गौरव-पूर्ण बखान धूल की आँधी के समान उस पर छाया रहता था।

इस युग के कवियों की एक विशेषता यह भी थी कि वे युद्ध या शृङ्गार में अपने आश्रयदाता का साथ नहीं छोड़ते थे। अपने आश्रयदाता के साथ शौर्य-प्रदर्शन करने और आवश्यकता पड़ने पर अपनी गर्दन कटवा देने में भी उन्हें संकोच नहीं होता था। शृङ्गार या प्रेम-क्रीड़ा के समय वे अपने आश्रयदाता के अनुचर और विश्वासपात्र होते थे। उनके काव्य का वर्णन-विषय सामन्तों एवं राजाओं के जीवन तक ही सीमित रहा। इन कवियों ने सामान्य जन-जीवन की घोर उपेक्षा की है। इन रचनाओं में, वस्तुओं की लम्बी सूची, सेना का नीरस वर्णन तथा स्थानों की विशेषताओं का विवरण इतना उबा देने वाला होता है कि सहज ही पाठकों को इनमें भाव प्रवणता के अभाव का दर्शन होने लगता है। इस युग की काव्यधारा वीररस की उत्ताल तरंगों में प्रवाहित होती थी किन्तु शृङ्गार की एक अन्तर्धारा भी उसमें गतिमान थी। यदा-कदा करुण, भयानक, रौद्र और वीभत्स रसों का भी परिपाक हो गया है जो समयानुकूल प्रभावकारी बन पड़ा है। इस युग के प्रमुख कवि हैं--नरपतिनाल्ह, नल्लसिंह, चन्दबरदायी, जगनिक, विद्यापति आदि।

पूर्व मध्यकाल (१४०० से १६५०)

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी समाप्त होते ही भारत के केन्द्रीय शासन में मुसलमान आक्रमणकारियों का पूर्णरूप से आधिपत्य हो गया था। देशी राजे-महराजे अपने स्वत्व को खोकर विलासिता और थोथे अहंकार के नशे में अपने गौरव को भूलने लगे थे। मुसलमानों का शासन हिन्दू धर्म और उसकी संस्थाओं पर करारी चोट करने से नहीं चूकता था। अपने को सुरक्षित रखने और बाह्य आक्रमण से अपने बचाव की सामर्थ्य जुटा पाने में हिन्दू राजाओं को असफलता ही मिली। आपसी-युद्धों और बाह्य आक्रमणों के कारण हिन्दू राजाओं की शक्ति का पूर्णरूप से क्षय हो गया था।

हिन्दू समाज में इसी राजनैतिक अस्थिरता के कारण विशृंखलता का एक भयंकर दौर चला और यवन शासकों का हिन्दुओं पर असहनीय अत्याचार

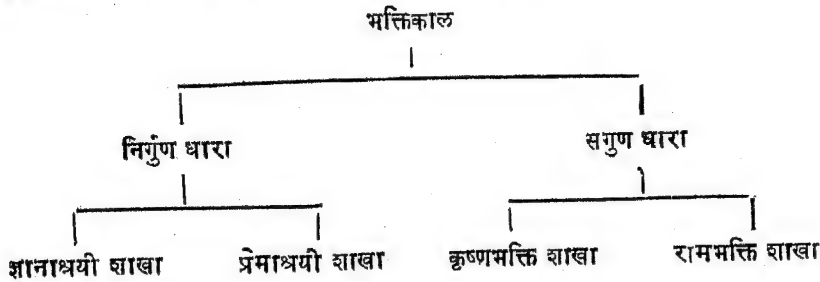
होने लगा। सामन्तों एवं राजाओं का विलासमय जीवन समाज को संरक्षण व निर्देशन प्रदान करने में असमर्थ सिद्ध हुआ। यही नहीं, सामान्य हिन्दू समाज इन सामन्तों एवं राजाओं के उत्पीड़न का शिकार होने लगा। इन सामन्तों द्वारा गरीब जनता के शोषण और उनपर मुसलमान शासकों के अत्याचार ने उन्हें दोहरे नियति का उत्पीड़न भोगने को बाध्य किया। गरीब जनता अन्धविश्वास, निर्धनता, उत्पीड़न, शोषण एवं निराशा के वातावरण में घुट रही थी। बाल-विवाह एवं बहु विवाह का प्रचलन जनता की निर्धनता और दरिद्रता का कारण था। हिन्दू सामन्तो के त्रास और यवन शासकों के अत्याचार से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए इन पददलित हिन्दुओं के सामने मुसलमान धर्म स्वीकार करने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प ही क्या था?

इस परिस्थिति में सिद्धों, नाथों और कापालिकों ने भी जनता को अपने अलौकिक आचरणों से चमत्कृत कर आकर्षित किया। मन्त्र-तन्त्र और यन्त्र का सर्वत्र बोलबाला होने लगा। वास्तविक धर्म का ह्रास और धर्म के नाम पर पाखण्ड, आडम्बर और मिथ्याचार का प्रचार अधिक बढ़ गया था। देश के पूर्वी क्षेत्रों में सहजयानी—और नाथपंथी साधकों की रचनाओं का प्रचुर भाण्डार प्राप्त होता है और पश्चिमी प्रदेश में नीति, शृङ्गार और कथात्मक साहित्य की उपलब्धि होती है। पहले प्रकार की रचनाओं में भावुकता, विद्रोह और रहस्यावादी मनोवृत्ति का वर्णन है तथा दूसरे प्रकार की रचनाओं में नियम, निष्ठा, रूढ़ि-पालन और स्पष्टवादिता का स्वर है। कालान्तर में दोनों के मिश्रण से एक ऐसे साहित्य का स्वर प्रस्फुटित हुआ जिसने भावी भक्ति-आन्दोलन की भूमिका तैयार की। श्रुति-सम्मत धर्म का प्रचार रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य और निम्बार्काचार्य के माध्यम से होने लगा। इस भक्ति-आन्दोलन की प्रमुख विशेषता अवतारवाद की स्थापना में मुखरित हुई। निराकार और साकार ब्रह्म की उपासना पद्धति में भक्ति-आन्दोलन ने इतनी तीव्रता दिखाई, जितनी कभी देखने को नहीं मिलती। निराकार ब्रह्म की उपासना ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को समीप लाने का सराहनीय कार्य किया और मानवता के पक्ष का प्रबल समर्थन होने लगा। इन भक्तों ने दोनों जातियों में समभाव उत्पन्न कर मानवता की अभूतपूर्व सेवा की। ईश्वर-भक्ति का मार्ग सबके लिए सुलभ और सरल बन गया। इन भक्तों ने भेद-भाव, छुआ-छूत, हिंसा एवं पाखण्ड को आड़े हाथों लिया।

वैष्णव-भक्ति,आन्दोलन का आरम्भ दक्षिण के आलवार भक्तों ने किया। इन्हीं आलवार भक्तों की परम्परा में आचार्य रामानुज का जन्म हुआ जिन्होंने नीच

जातियों में प्रचलित ऐकान्तिक भक्ति-धर्म को अपना संरक्षण प्रदान किया, साथ ही साथ देशी भाषा में लिखित शठकोप प्रभृति के 'तीरुवेलगुर' शास्त्रों का वैष्णवों के वेद का-सा सम्मान दिया। उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का संक्रमण उस समय और तीव्र गति से हुआ जब उसका नेतृत्व स्वामी रामानन्द और महाप्रभु वल्लभाचार्य के हाथों में आया। स्वामी रामानन्द ने दोनों श्रेणी के भक्तों को अपनाया—एक तो वे जो निगुर्ण भाव से राम की उपासना करते थे; दूसरे वे, जो राम की उपासना अवतार रूप में करते थे। वल्लभाचार्य ने कृष्णभक्ति का प्रचार करते हुए पुष्टि मार्ग का प्रवर्तन किया। इसमें भगवान् के अनुग्रह से ही प्रेमप्रधान भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति होती है। भगवान् के इसी अनुग्रह और पोषण को मुक्ति कहते हैं।

इस प्रकार भक्ति-आन्दोलन की जो प्रमुख धाराएँ उत्तर भारत में प्रवाहित हुई, उनका वर्गीकरण हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं–



निर्गुण काव्यधारा

ज्ञानाश्रयी शाखा की निर्गुण भक्ति के विकास के मूल में अवतारवाद की उपेक्षा और कुलीन हिन्दू समाज द्वारा स्थापित उपासना के प्रति विरक्ति की भावना थी। निर्गुणभक्ति के प्रवर्त्तकों ने उपेक्षित और अवमानित जनता में आत्म-गौरव का भाव जगाकर तत्कालीन भक्ति आन्दोलन को जो पूर्णता प्रदान की वह सारभौम हिन्दू समाज के लिए वरदान सिद्ध हुई। पंडित रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—'यह सामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ जो कभी ब्रह्मवाद की ओर ढलता था और कभी पैगम्बरी खुदा की ओर। इस भक्ति का विकास कार्य के क्षेत्र में दो धाराओं के माध्यम से हुआ। जिन लोगों ने ज्ञान को सर्वोपरि महत्व प्रदान कर ज्ञानमार्ग का अनुसरण किया वे ज्ञानमार्गी कहलाये और लौकिक प्रेम-गाथाओं के माध्यम से ईश्वरपरक प्रेम की झाँकी प्रस्तुत करने वाले प्रेममार्गी कहलाये जिनमें सूफियों के काव्य भी सम्मिलित हैं।"

निर्गुण भक्ति के प्रवर्त्तक के रूप में रामानन्द का नाम प्रमुख है। इसके बारह शिष्यों की चर्चा नाभादास ने भक्तमाल में की है। ये बारह शिष्य हैं– अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, भावानन्द, पीपानन्द, कबीर, सेना, धना, रैदास, पद्मावती और सुरसुरी। ये सभी कवि सन्त थे। इस सम्प्रदाय के लगभग सभी संतों ने हिन्दी में प्रचुर रचनायें कीं, साथ ही एकेश्वरवाद तथा निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना और हठयोग द्वारा साधना की सिद्धि पर बल दिया। मूर्तिपूजा का खण्डन, जाति-पाँति, धार्मिक पाखण्ड तथा भेद-भाव आदि पर इन्होंने करारा प्रहार किया। किन्तु मूलत: ये भक्त संत ही थे। शिक्षा के अभाव तथा एक ही विषय के पिष्ट-पेषण के कारण इनके काव्य में कला का निखार कम हो पाया है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि या तो मुसलमान थे या निम्न श्रेणी के हिन्दू। दोनों ही कुलीन हिन्दू परम्पराओं के प्रतिकूल थे। यही कारण है, इनके विचारों में कुलीन हिन्दू समाज की धार्मिक मान्यताओं के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया हुई। जिसके कारण इनकी रचनाओं का उद्देश्य साहित्यिक न होकर उपदेशात्मक और कहीं-कहीं खण्डनात्मक भी हो गया है। जनता के बीच जन्मे, पले, बढ़े, जिये और मरे। इन सन्त कवियों ने जनता की ही भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। छन्द की दृष्टि से इनकी रचनायें साखी, शब्दी, झूलना तथा कवित्त-सवैया में हुईं और इन्हीं के माध्यम से अपने निर्गुण ब्रह्म की प्रेमसम्बन्धी भावनाओं को इन्होंने रहस्यानुभूति की अतल गहराई में ले जाकर प्रस्तुत किया। कबीर इस धारा के प्रमुख कवि हैं तथा रैदास, दादू, सुन्दरदास आदि कवियों का नाम भी उल्लेखनीय है।

कबीर– निर्गुण भावधारा के उन्नायकों में कबीर का नाम प्रमुख है। सूफी मुसलमान फकीर शेख तकी से दीक्षित, स्वामी रामानन्द का शिष्यत्व ग्रहण कर कबीर ने अपने काव्य में सर्व समन्वय की व्यापक दृष्टि अपनायी है। उनका मन योगियों के संस्कार से सुसंस्कृत था। बौद्ध-सिद्ध और नाथपंथी योगियों की भाँति कबीर में उच्चवर्गीय संस्कृति के प्रति विद्रोह की भावना, गुरु के महत्व में आस्था और पिण्ड-ब्रह्माण्ड की एकता पर विश्वास था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—"जो ब्रह्म हिन्दुओं की विचार पद्धति में ज्ञानमार्ग का एक निरूपण था उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना का ही नहीं प्रेम का भी विषय बनाया और उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया। इस प्रकार

उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद एवं वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया।" कबीरदास न तो हिन्दू थे न मुसलमान। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। वे भगवान की ओर से सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे''''कबीरदास ऐसे ही मिलनबिन्दु पर खड़े थे जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमान''''।

कबीर की वाणियों का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है जिसके 'रमैनी', शब्द और 'साखी' तीन भाग हैं। इनकी सभी रचनायें मुक्तकशैली में हैं। कबीर ने हृदय की गहनतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मुक्तक शैली में ही की है। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, जैसा कि उन्होंने लिखा है, 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहि हाथ'। फिर भी अनेक प्रकार के रूपकों एवं अन्योक्तियों के माध्यम से कबीर ने ज्ञान की बातें जनता तक पहुँचायी हैं। 'शब्द' में अधिकतर पद गेय हैं और 'साखी' में इनकी शिक्षा, सिद्धान्त और उपदेश प्राप्त होते हैं।

कबीर ने भाषा के बन्धन को कभी स्वीकार नहीं किया। उनकी मरजी के अनुसार भाषा उनके अनुरूप हो जाती थी। इसलिए परम्परागत व्याकरण की कसौटी पर कबीर की भाषा कसनेवाले को निराश ही होना पड़ता है। इनके गेय पदों में कहीं कहीं ब्रजभाषा एवं पूरबी बोली का प्रयोग मिल जाता है। कबीर ने पर्याप्त देशाटन किया था। इस कारण विविध प्रान्तों की भाषाओं के अनगढ़ शब्दों का प्रयोग इन्होंने बेझिझक किया है। कुछ ने इसी कारण उनकी भाषा को सधुक्कड़ी कहा, कुछ ने पंचमेल खिचड़ी। सच तो यह है कि कबीर ने कभी भाषा की परवाह नहीं की। इसलिए पूरबी बोली, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, और राजस्थानी के जो भी शब्द उनके हाथ लगे, उन्होंने उनका उन्मुक्त प्रयोग किया। कबीर को अपनी बात कहनी थी, अपने भाव को व्यक्त करना था और इसके लिए भाषा के बन्धन को कबीर ने कभी स्वीकार नहीं किया।

कबीर क्रान्तिकारी युग-पुरुष थे। समाज के अधःपतन को देखकर उनकी आत्मा व्याकुल हुई थी, और उसके लिए उन्होंने समाज के पतन के कारणों पर करारा प्रहार भी किया था। धर्म और भक्ति उनके जीवन के मूल लक्ष्य थे।

प्रेमाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी-शाखा के निर्गुण कवियों ने जिस प्रकार निर्गुण भक्ति साधना में ज्ञान की महत्ता पर विशेष बल दिया, उसी प्रकार प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी कवियों ने हृदय के भावपक्ष पर जोर दिया। इनकी भाषा अटपटी न होकर सरल व सपाट थी जो हृदय को छूती व मर्म को बेधती थी। लौकिक-प्रेम को अलौकिक प्रेम के धरातल पर ले जाना इन कवियों का मुख्य लक्ष्य था।

सूफी कवियों की रचना प्रबन्ध काव्यों के रूप में हुई जिनका गठन चरित-काव्यों की सर्गबद्ध पद्धति पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुआ है। भाषा के लिए इन कवियों ने पूरबी अवधी को ही स्वीकार किया। इनके काव्य की कथायें प्रायः हिन्दू जीवन से सम्बन्ध रखती हैं पर ये कथायें निमित्त मात्र हैं। इनके सहारे अलौकिक प्रेम की चर्चा की गयी है। सूफो कवियों में उदार मुसलमान ही अधिक थे और इनकी रचनाओं में स्थापित दर्शन पर हिन्दू वेदान्त दर्शन का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इन सूफी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी का नाम सर्वश्रेष्ठ है।

मलिक मुहम्मद जायसी

जायसी के ग्रन्थों की संख्या अधिक बताई जाती है। पर उनमें सबसे प्रमुख 'पद्मावत' है। 'पद्मावत' को शृङ्गार रस प्रधान प्रबन्ध काव्य कहा जा सकता है, 'पद्मावत' की कथा दिल्ली-सुल्तान अलाउद्दीन, चित्तौड़ की रानी पद्मिनी को लेकर लिखी गयी है जिसमें इतिहास, कल्पना, तथा सूफी सिद्धान्तों का सुन्दर समन्वय है। अलौकिक प्रेम व्यंजना को सफल अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए इस काव्य में रूपक का असफल निर्वाह हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काव्य को प्रेम गाथा की प्रौढ़ रचना माना है।

कतिपय कथानक रूढ़ियों का प्रयोग करते हुए जायसी ने इस काव्य को प्रेम-निरूपण का जो हृदयस्पर्शी एवं व्यंजक रूप प्रदान किया हैं, उससे प्रकट होता है कि जायसी में सर्जनात्मक प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगोचर होती है। जायसी सही अर्थ में फकीर थे।

महाकाव्य की दृष्टि से विचार करने पर इस काव्य में कतिपय दोष हैं। इसमें जीवन की समग्रता को ग्रहण करने की शक्ति का अभाव है। हाँ, कुछ स्थल नितान्त सुन्दर हैं। नख-शिख वर्णन, शृङ्गार और रति की अवतारणा, वीर और

शृङ्गार का सुन्दर समन्वय, मिलन का आत्मसमर्पण और विरह की विश्व-दाहक ज्वाला इस काव्य के मनोरम आकर्षण हैं। वियोग-वर्णन में जायसी ने निश्चय ही बड़ी तन्मयता दिखाई है और यहीं लोक-जीवन के प्रति उनका अनुराग देखते बनता है। जायसी का विरहवर्णन ऊहात्मक न होकर वेदनात्मक है। वियोग की दसों दशाओं में नागमती की 'उन्मादावस्था' का जो चित्र जायसी ने खींचा है, वह बड़ा हृदय-विदारक है। उसकी विरह-पीड़ा ने पशु पक्षियों में भी संवेदना की तीव्र पीड़ा जाग्रत कर दी है—वे उससे पूछते हैं—"तू फिरि-फिरि दाहे सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी।"

जायसी का रहस्यवाद भावात्मक था। कबीर में यदि प्रतिभा थी तो जायसी में हृदय की भावुकता। रूप-सौन्दर्य के सृष्टि-व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना जायसी की अपनी विशेषता है। जायसी में परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने का आग्रह अधिक दिखाई पड़ता है। अप्रस्तुत की ओर संकेत देने वाले प्रसङ्गों की उद्भावना जायसी ने बड़ी कुशलता के साथ की है। सिंहल-गढ़, उसके बगीचे, मानसरोवर, नागमती का बाह्य रूप वर्णन ऐसे स्थल हैं, जहाँ जायसी ने लोकोत्तर सत्ता की ओर संकेत करने के अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया है।

इनकी भाषा ठेठ अवधी है। इन्होंने अतिशयोक्ति, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का जमकर प्रयोग किया है।

सगुण धारा—

कृष्णभक्ति साहित्य—उत्तर भारत में राधाकृष्ण की भक्ति का शास्त्रीय ढंग से प्रतिपादन का प्रारम्भिक श्रेय निम्बार्काचार्य को है। किन्तु महाप्रभु वल्लभाचार्य के शुभागमन के बाद उत्तर भारत में कृष्णभक्ति के साहित्य को एक नवीन आदर्श और नवीन प्रेरणा प्राप्त हुई। वल्लभाचार्य के प्रभाव से कृष्णभक्ति की सरस धारा को छूकर बहने वाली हवा के शीतल झोंकों ने ज्ञानियों के नीरस मानस को भी सरसता की लहरों में आह्लादित कर दिया। वल्लभाचार्य जी का दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है और उसका आचरण पक्ष पुष्टि मार्ग के नाम से जाना जाता है। उनके अनुसार माया के सम्बन्ध से रहित होने के कारण ब्रह्म शुद्ध कहा जाता है और यही मायारहित स्वतन्त्र ब्रह्म इस विश्व में कार्य तथा कारण रूप सर्वत्र व्याप्त है। ब्रह्म ही जीव तथा जगत् के रूप में आविर्भूत होता है। यह सृष्टि ईश्वरलीला का विकास है। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन

किया। पुष्टि का अर्थ है—'भगवान् का अनुग्रह।' पुष्टि का प्रमुख साधन है—भक्ति-प्रपत्ति। पुष्टि मार्ग के आचरण पक्ष में साधक के लिए प्रातःकाल के जागरण से लेकर रात्रि के शयन तक के लिए भगवान् की सेवा की विविध विधियों का विधान है।

वल्लभाचार्य ने निर्गुण ईश्वर के बदले कृष्ण के सुबोध, सरल और सगुण लीला वपु की व्याख्या की जिसमें प्रेमाभक्ति की स्थापना हुई। कृष्ण के इस लीला-रूप के गायक भक्त कवियों ने कृष्ण की लीलास्थली ब्रज की भाषा को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया। ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में काव्य और संगीत दो कलाओं का जो समन्वित रूप प्रस्तुत हुआ है, वह अत्यन्त मनोहर व अन्यत्र दुर्लभ है।

वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ जी ने वल्लभ-सम्प्रदाय को संगठित किया और कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास को मिलाकर अष्टछाप की स्थापना की। भक्ति भावना और रचना सौंदर्य की दृष्टि से इन सभी अष्टछाप के कवियों में सूरदास भक्ति-मणि-माला के सुमेरु हैं।

सूरदास सूरदास द्वारा रचित अब तक तीन ग्रन्थों को प्रकाश में लाया जा सका है—'सूरसागर', सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी'। किन्तु प्रामाणिकता की दृष्टि से 'सूरसागर' ही इनका एक मात्र निर्विवाद ग्रन्थ समझा गया है। सवा लाख पदों वाले इस ग्रन्थ के अभी तक ५-६ हजार पद ही उपलब्ध हैं।

सूरदास में कलापक्ष एवं भाव पक्ष का अभूतपूर्व समन्वय हुआ है। यह निर्णय करना कठिन है कि सूर कविरूप में बड़े थे, या भक्तरूप में। भक्तरूप में सूरदास ने प्रेम को काव्य का मूलतत्व माना है। पुष्टिमार्गीय भक्ति-समर्थित वात्सल्य एवं दाम्पत्य भावना का चरमोत्कर्ष सूर साहित्य में प्राप्त होता है। कवि के रूप में सूर की सबसे बड़ी विशेषता है—मौलिकता और स्वच्छन्दता। तुलसी ने 'नाना पुराण निगमागम की खाक छानी थी किन्तु सूर के लिए न तो यही सुलभ था और न बाह्य संसार की छटा ही। उनका जो कुछ था, वह अपना था। शान्त, वात्सल्यी और श्रृङ्गार का जितना उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया है, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं।

सूरदास ने श्रीकृष्ण के बाल्य-जीवन का अत्यन्त विशद चित्रण विभिन्न रूपों में किया है। वह चित्रण चाहे रूप-सौंदर्य का हो या बाल-चेष्टाओं एवं विभिन्न क्रीड़ाओं का हो; अथवा बालसुलभ भाव की व्यंजना हो या बाल-संस्कारों के विभिन्न सन्दर्भों का हो, सूरदास ने बालक की अन्तःप्रकृति का अनावरण बड़ी स्वाभाविकता के साथ किया है। बाललीला-वर्णन में इतनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता अन्यत्र दुर्लभ है। इसी कारण पुनरावृत्ति होते हुए भी पाठक को कुछ नहीं अखरता। सूरदास का भक्त हृदय यशोदा के माध्यम से असंख्य रसधाराओं में डूब जाता है। सूरदास का वही हृदय गोपियों, ग्वालों और राधा के रूप में अभिव्यक्त हो उठा है।

शृङ्गार-वर्णन में सूरदास ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को बड़ी तन्मयता के साथ चित्रित किया है। राधा के रूप में सूरदास ने भक्त-हृदय का जो चित्र खींचा है वह अपूर्व तन्मय प्रेम का रूपान्तर है। इस प्रेम में रति-दाम्पत्य भाव का सम्पूर्ण समर्पण है। मिलन की अवस्था में विरह की आशंका और विरह की अवस्था में मिलन की छटपटाहट का भाव छिपा रहता है। संयोग-वर्णन में सूरदासजी राधा-कृष्ण की ललित लीलाओं का अवलोकन कर आत्मविभोर हैं और विप्रलंभ में उनकी बाह्य चेतना का प्रसार विश्वव्यापी हो गया है। वियोग-शृङ्गार का वर्णन सूरसागर में भ्रमर-गीत के नाम से प्रसिद्ध है।

सूरदास के काव्य में अलंकारों का संगुफन स्वाभाविक ढंग से हुआ है। लगता है, अलंकार उन्हें ढूंढने नहीं पड़े हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों के माध्यम से सूर के काव्य में जो निखार आया है, वह ब्रजभाषा के किसी अन्य कवि में नहीं मिलता। भ्रमर-गीत में वक्रोक्ति का पुट है। सूरदास में विधायक कल्पना का विकास नवीन प्रसंगों की सहज उद्भावना में हुआ है। भावों की तरलता और सघनता, भाषा का प्रवाह और उसकी ध्वन्यात्मकता तथा संगीत की शास्त्रीय मर्यादा से अनुशासित सूरदास के गीत हिन्दी जगत की अनुपम निधि हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'काव्य-गुणों की विशाल वनस्थली में एक अपना सहज सौन्दर्य है। वह उस रमणीय उद्यान के समान नहीं, जिसका सौन्दर्य पद-पद पर माली के कृतित्व की याद दिलाया करता है; बल्कि उस अकृत्रिम वन-भूमि की भाँति है जिसका रचयिता रचना में ही घुल-मिल गया है।

रसखानि—

श्रीकृष्ण के लीलामय ललित रूप के आकर्षण में एक विश्वजनीन तत्व है। इस कारण धर्म, सम्प्रदाय और विश्वास के कृत्रिम बन्धन श्रीकृष्ण की भक्ति माधुरी के सम्मुख समाप्त हो गये। मुस्लिम सहृदय भी कृष्ण की इस भक्ति में लीन हुए।

इसमें 'बादसा वंश की ठसक' छोड़नेवाले सुजान रसखानि कवि सबसे प्रमुख है। रसखानि के रचे हुए ग्रन्थों में 'प्रेमवाटिका, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 'प्रेमवाटिका' में भक्तियोग के रहस्यपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन तथा गोपी-भाव की प्रेमभक्ति की उत्कृष्टता का प्रदर्शन सरल दोहों में करना रसखानि की विलक्षण प्रतिभा का द्योतक है। इनकी दूसरी रचना 'सुजान रसखान' में कवित्त और सवैया हैं। इनके काव्य का मुख्य विषय कृष्ण-विषयक रति से सम्बद्ध है। रसखानि ने प्रेम को त्यागमय और कामनारहित माना है जिसमें प्रेम के आश्रय और आलम्बन एकाकार हो जाते हैं। शुद्ध व्रजभाषा में लिखे गये इनके सवैयों में यदाकदा अरबी-फारसी के शब्द भी मिल जाते हैं, पर वे छन्दों के बीच अजनबी नहीं लगते। निश्चय ही रसखानि रससिद्ध और भाषासिद्ध कवि हैं।

राम भक्ति साहित्य

देश में अस्थिरता का वातावरण इतनी व्यापकता से छा गया था कि निर्गुण भक्ति की ज्ञानचर्चा और हठयोग का प्रवाह और सगुण भक्ति में कृष्ण के लोक-रंजक रूप का विन्यास किसी सामाजिक लोक जीवन की आदर्श स्थापना में नितान्त असफल सिद्ध हुआ। ऐसी स्थिति में लोक-मंगलकारी भावनाओं के प्रति समर्पित भाव से आस्थावान होने की प्रक्रिया का सूत्रपात जिस आदर्श से संभव था, वह था राम का आदर्श जीवन। स्वामी रामानन्द ने भक्ति-धारा में 'राम' नाम का जो बीजमंत्र दिया, उसका महत्त्व सगुण-निर्गुण दोनों उपासकों ने स्वीकार किया; किन्तु दोनों ने इसका भिन्न अर्थ ग्रहण किया। कबीर ने कहा—"दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम को मरम है आना॥" उधर तुलसीदास ने 'राम', का दूसरा पक्ष स्वीकार किया—

जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगतहित, कोसलपति भगवान॥

निर्गुण भक्त अवतार में विश्वास नहीं रखते थे, जबकि सगुणोपासक राम को ईश्वर का अवतार मानकर एक ऐसे आदर्श मानव की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे जिससे हिन्दू जन-मानस डूबते को तिनके का सहारा पा सके। ईश्वर की लीला में सगुण और निर्गुण दोनों भक्तों का विश्वास था किन्तु निर्गुण भक्तों के लिए संपूर्ण विश्व ही उस लीला की भूमिका जबकि सगुणमार्गी भक्तों के लिए लीला मानव वेश में अवतरित भगवान की जीवनचर्या का रमणीय और लोकरंजक रूप था।

सगुण भक्ति-धारा में राम का अवतार जन-कल्याण की भावना से होता है। वे दशरथ के पुत्र हैं और सभी मानवोचित सामाजिक धर्मों एवं उत्तरदायित्वों का पालन करते हुए एक ऐसे आदर्श की स्थापना करते हैं जो दीन-दुखी जनों का सहायक है। दुष्टों के लिए घातक और भक्तों के लिए रक्षक है। विशिष्टाद्वैत की दार्शनिक पृष्ठभूमि में सिर्फ सगुण भक्तों की रचनाओं में यह स्थापना की गई कि जगत के सभी प्राणी ब्रह्म के ही अंश हैं जो उसी से उत्पन्न होते हैं और पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं। उपासना के लिए इन भक्तों ने सबके अधिकार को समान माना और किसी भी प्रकार के लौकिक बन्धनों को अस्वीकृत कर दिया। इन भक्तों ने जगत् में लीला-विस्तार करनेवाले विष्णु के अवतार राम का आश्रय लिया। राम इनके इष्टदेव हुए और राम-नाम इनका मूल मंत्र। स्वामी रामानन्द द्वारा प्रवर्तित इस सम्प्रदाय में जितने भी भक्तकवि हुए, उनमें गोस्वामी तुलसीदास का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने राम-भक्ति-आन्दोलन को श्रेष्ठ साहित्यिक प्रतिभा तथा भक्ति-भाव की अद्भुत तल्लीनता से ठोस धरातल प्रदान किया।

गोस्वामी तुलसीदास—'रामचरितमानस', 'रामलला नहछू', 'वैराग्य संदीपनी', 'बरवै रामायण', 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली,' 'श्रीकृष्ण गीतावली' और 'विनय पत्रिका' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हिन्दी-जगत में एक ईश्वरीय वरदान सिद्ध हुआ। धार्मिक भावनाओं के त्रास, नास्तिकता के तीव्र प्रभाव से आक्रांत और भारतीय संस्कृति के पतन से विस्मृत भारत में तुलसीदास का पदार्पण जिस समन्वयात्मक विशालता, सारग्राहिणी प्रतिभा और काव्यात्मक सृजन की अद्भुत चेतना के साथ हुआ, उससे सारा हिन्दी-जगत गौरवान्वित हो उठा।

अपने वैयक्तिक जीवन से निराश, संत्रस्त, ठुकराये गये, तिरस्कृत और अपमानित तुलसीदास ने हमें जो साहित्य दिया उसमें अपूर्व आशा, विश्वास, आत्मबल और आदर्श की परिकल्पना है। लोक-जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण से संपन्न परम्परागत सभी काव्य-विधाओं का सफल प्रयोग तुलसीदास ने किया है। छप्पय, कुण्डलिया, दोहा, चौपाई, पद, सवैया, बरवै आदि नानाविध छन्दों को उन्होंने अपनी अद्भुत ग्राहिका-शक्ति से आत्मसात कर लिया। साधारण जनता में प्रचलित गीति-पद्धति से लेकर शिक्षित समाज में प्रचलित काव्यरूपों का सफल सृजन कर उन्होंने अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया वह अन्यतम है।

लोक-जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण और विविध शास्त्रों के गहन अध्ययन से संपन्न तुलसी ने सर्वसमन्वय की स्थापना का सफल प्रयास किया। उन्होंने लोक और शास्त्र

का ही नहीं अपितु वैराग्य और गार्हस्थ्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का भावावेग और अनासक्त चिन्तन का, शैव और वैष्णव का, शाक्त और वैष्णव का, ब्राह्मण और चाण्डाल का, पण्डित और मूर्ख का समन्वय भी अपने 'रामचरितमानस' में किया है। राम को शिव का और शिव को राम का भक्त बताकर तुलसीदास ने शैवों और वैष्णवों के विवाद का बड़ी सफलता से अन्त कर दिया है। उनकी भाषा जितनी लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय भी। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग तुलसीदास की बहुत बड़ी विशेषता है। उनकी भाषा के सम्बन्ध में पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"जहाँ भाषा साधारण और लौकिक होती है वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह चुभ जाती हैं और जहाँ शास्त्रीय और गम्भीर होती हैं, वहाँ पाठक का मन चील की तरह मँडराकर प्रतिपादित सिद्धान्त को ग्रहण कर लेता है।"

गोस्वामी तुलसीदास को बड़ी ही सूक्ष्मदर्शिनी एवं तत्वग्राहिणी दृष्टि मिली थी। मानव-प्रकृति का इतना सही और मनोवैज्ञानिक निरूपण उनकी अद्भुत सूझ-बूझ का परिचायक है। इनकी दृष्टि जितनी अन्तःप्रकृति में रमी है उतनी बाह्य प्रकृति में नहीं।

स्वान्तः सुखाय का उद्घोष कर काव्य रचनेवाले तुलसी कल्याण और लोकहित को दृष्टि में रखकर पूरी भावुकता के साथ जिस प्रकार राम की कथा कहते हैं, उसमें जीवन के मर्म का स्पर्श करनेवाले सभी रसों का समावेश हो जाता है। शील और मर्यादा के आदर्श राम में सभी मानवोचित गुणों का रूप विद्यमान है, यही कारण है कि आज मानस उत्तरी भारत की जनता का वेद बन गया है। फिर भी इतना सब अवश्य है कि कविता लिखने के कारण तुलसी को उतना गौरव नहीं मिला जितना कविता को तुलसी के हाथों सजने-सँवरने से गौरव का स्थान मिला।

उत्तर मध्यकाल (रीति और शृङ्गार-साहित्य)

मध्यकाल के उत्तरार्द्ध का आरम्भ सं० १६५० से हुआ माना जाता है। इस समय तक आते-आते मुगलों का शासन दिल्ली पर स्थापित हो चुका था। यह वह युग था जब राजाओं और सम्राटों में कलाप्रियता पराकाष्ठा पर पहुँच रही थी। दिल्ली के शासनाधिपति सम्राट अकबर ने हिन्दू और मुसलमानों में एक संतुलन बनाकर उनमें सामंजस्य की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। उसकी कलाप्रियता, विद्यानुराग तथा उदारवादी दृष्टिकोण ने भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं कला में एक नवीन मोड़ उपस्थित किया। उसने कवियों को अपने दरबार में उच्च स्थान, धन,

जागीर और पद देकर सम्मानित किया। उसके अनुकरण में देशी राजाओं ने भी अपने दरबार में कवियों को सम्मानित ढंग से आश्रय देना प्रारम्भ कर दिया। कवियों का जीवन भी राजसी हो गया। हिन्दी-भाषा के कवियों के इस सम्मान, ठाट-बाट, रहन-सहन और आर्थिक प्रगति को देखकर अधिकाधिक कवियों ने इस ओर आकर्षण अनुभव किया और वे दरबारी प्रश्रय की तलाश में रहने लगे। फलतः इस युग के कवि दरबारी संस्कृति की चकाचौंध से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

कला, संस्कृति और साहित्य का केन्द्रस्थल मुगल दरबार कलाकारों और सामन्तों, कलाकार-सामन्तों का जमघट बनकर रह गया जिससे लोकजीवन से कटकर एक सामंतीय और दरबारी संस्कृति का उदय हुआ। इन दरबारियों, सामन्तों और नवाबों की बैठकें भी मुगल दरबार की नकल पर शान-शौकत में उससे भी आगे बढ़ जाने की होड़ में सजने लगीं। दरबार की तड़क-भड़क, साज-सज्जा और अलंकरण की प्रवृत्ति सम्राट शाहजहाँ के काल में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। सुरुचिपूर्ण कलात्मकता से पूर्ण रत्नाभरण से भूषित दरबार के प्रभामंडल में एक ऐसे समुदाय का विकास हुआ जो भारत में रहकर भारतीय जन-जीवन और उनकी समस्याओं से नितांत भिन्न था। इन दरबारों में लिखी गई कविताओं से लोक-जीवन की झलक नहीं अपितु सामंती जीवन और संस्कृति का विलास अभिव्यक्त हुआ है।

दरबारों में हिन्दी के इन कवियों की प्रतिद्वन्द्विता उर्दू और फारसी के शायरों से होती थी। उर्दू और फारसी की परम्परा से होड़ लेने की प्रतिक्रिया-स्वरूप हिंन्दी-कवियों ने अपनी प्रतिभा का परिचय मुक्तकों के माध्यम से ही दिया। "फारसी की रचना प्रेम का ही बँधा-बँधाया विषय लेकर चलती थी, जिसकी जोड़ में हिन्दी-कवियों ने शृङ्गार या नायक-नायिका भेद की रचनाएँ सामने कीं। उधर से वे शेर पढ़ते थे या गजल गाते थे, इधर से ये कवित्त, सवैया या दोहा सुनाते थे।" परिणामस्वरूप इस काल में स्वतन्त्र मुक्तकों का निर्माण तो हुआ ही, साथ ही साथ नायक-नायिका भेद और अलंकार-वर्णन जैसे लक्षण-ग्रन्थों का भी निर्माण पर्याप्त मात्रा में हुआ। इस युग के लक्षणकार संस्कृत के आचार्यों से इस कारण भिन्न थे कि इनमें कवित्व और आचार्यत्व दोनों गुणों का समन्वय था। इस काल के आचार्य एकाध को छोड़कर, मूलतः कवि ही थे। केवल परम्परा का निर्वाह करने की दृष्टि से उन्होंने लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण किया और उसके उदाहरण स्वयं प्रस्तुत किये। लक्षण ग्रन्थों, अलंकारों और काव्य-पद्धतियों की एक विशिष्ट परम्परा का पालन करने के कारण इन कवियों को रीति कवि कहा जाता है किन्तु

इनके कथा का मूलाधार नायक-नायिका भेद, शृङ्गारपरक रति और प्रेम होने के कारण इस युग को शृङ्गार-काल भी कहा जाता है। इस युग के कवियों को तीन श्रेणियों में रखा गया है—रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। लक्षण-ग्रन्थ लिखनेवाले और उनके उदाहरण के लिए कविता लिखनेवाले कवि रीतिबद्ध कहलाये। रीतिसिद्ध कवि वे हैं जिन्होंने लक्षण-ग्रन्थ तो नहीं लिखे पर उनकी कविता को लक्षण-ग्रन्थों में वर्णित सभी नियमों के उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। रीतिमुक्त कवियों ने बिना किसी आग्रह या बन्धन के अपनी शृङ्गारपरक रचनाएँ कीं जिनमें उन्होंने अपनी मस्ती और वैयक्तिक अनुभूति को प्रकाशित किया जिसका अभाव पहले दो प्रकार के कवियों में सर्वत्र पाया जाता है।

इस काल के नामकरण के प्रश्न पर भी विद्वानों में परस्पर मतभेद है। आचार्य शुक्लजी और पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस काल को रीतिकाल कहना उचित समझा है जबकि पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे 'शृङ्गार काल' के नाम से संबोधित करने में अधिक औचित्य देखा। भक्तिकाल के तुरन्त पश्चात् आनेवाले इस युग के कवियों ने भक्तों की 'राधा' और 'कृष्ण' को दरबार के सामान्य नायक-नायिका के रूप में प्रस्तुत कर लौकिक शृङ्गार की ओर उन्मुख अपनी प्रवृत्तियों को भक्ति के पारदर्शी आवरण में डालकर अपनी प्रकृति का परिचय दिया। इस प्रकार इस युग के कवियों की प्रवृत्ति भक्तिकालीन कवियों की प्रवृत्ति से नितांत भिन्न है। उन्होंने लौकिकता को पारलौकिकता से जोड़ने की कोशिश नहीं की। कम से कम ये अपने स्वभाव, परिवेश और वातावरण के प्रति पर्याप्त वफादार रहे और जिस मानवीय भावभूमि की ओर इनकी रुझान थी, उसको व्यक्त करने में इन्होंने संकोच नहीं किया। यद्यपि इनके काव्य की भूमि सिमटकर नारी के अङ्गों और शृङ्गार-विन्यास पर ही केन्द्रित हुई थी पर इस काल के कवियों ने नारी-सौन्दर्य और उसकी भावभंगिमाओं का जो जीवन्त रूप प्रस्तुत किया वह अन्यत्र दुर्लभ है। शृङ्गार ही एक ऐसा सामान्य तत्व है जो सभी कवियों में कम या अधिक समान रूप से प्राप्त है। वैसे इन कवियों ने किसी एक ही शास्त्रीय परिपाटी का निर्वाह अपनी रचनाओं में नहीं किया।*

नाना प्रकार की प्रेम-क्रीड़ाओं को व्यक्त करने वाला कामशास्त्र, उक्तिवैचित्र्य के विवेचन करने वाले अलंकारशास्त्र और नायक-नायिकाओं के भेद एवं स्वभाव को स्पष्ट करनेवाले रसशास्त्र इन कवियों के प्रमुख प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। इसीलिए भक्तों के आलम्बन कृष्ण इन कवियों के लिए शृङ्गार के आलम्बन बन गये। फिर भी

इनकी रसिकता के मूल में इनकी स्वाभाविक मस्ती नहीं थी अपितु इनका क्लान्त स्वभाव, मानसिक भटकाव एवं थकान ही इनकी रचनाओं के मूल थे जिनसे मुक्त होने की छटपटाहट इन कवियों में निरन्तर रही है। नारी के बारे में इनका दृष्टिकोण बड़ा संकीर्ण था। नारी को ये मात्र विलास की वस्तुएं एवं पुरुषों के आकर्षण का केन्द्र मानते थे।

इन कवियों पर संस्कृत के अलंकार-ग्रन्थों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। इसलिए इस युग के अधिकांश कवियों ने इन्हीं अलंकार-ग्रन्थों की परिपाटी पर लक्षण-ग्रन्थों का लिखना अपना मुख्य उत्तरदायित्व समझा। यही आचार्यत्व दोष इनकी कवि-प्रतिभा के लिए बाधक भी सिद्ध हुआ। अलंकारों के लिए प्रयुक्त उदाहरण अलंकार व्यक्त करने के साधन न होकर स्वयं साध्य हो गये। कुछ ऐसे भी कवि हुए जिन्होंने अलंकार और रस, दोनों से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की। इनमें केशव प्रमुख थे।

केशवदास—केशव मूलतः चमत्कारवादी कवि थे। इनके मुख्य ग्रन्थ हैं—'रसिकप्रिया', रामचन्द्रिका', 'कविप्रिया', 'नखशिख', 'रतन बावनी', 'वीरसिंह देव-चरित', 'विज्ञान गीता' और 'जहाँगीर जस चन्द्रिका'। इनके लक्षण-ग्रन्थों में 'कवि-प्रिया' और 'रसिकप्रिया' प्रसिद्ध हैं। इनकी रामचन्द्रिका एक प्रबन्धकाव्य जिसमें राम का चरित्र वर्णित है; पर केशव के राम में तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तमहै राम का स्वरूप सुरक्षित नहीं रह सका है। केशव ने राम और सीता को मध्य-कालीन नायक-नायिका के रूप में चित्रित किया है; जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि केशवदास में भक्ति की कितनी प्रेरणा थी।

केशव को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा जाता है। शुक्लजी उन्हें हृदयहीन कवि मानते हैं। वस्तुतः केशव का मुख्य उद्देश्य संस्कृत-काव्य की उपादेय सामग्री को हिन्दी में सर्वसुलभ बनाना था। यही कारण है कि केशव में मौलिकता का अभाव पाया जाता है। मौलिकता के अभाव में केशव का पांडित्य अपनी परम्परा का निर्माण तो नहीं कर सका पर उसने परवर्ती हिन्दी-कवियों को प्रेरणा अवश्य प्रदान की।

केशव ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार की शैलियों में काव्य-रचना की है किन्तु अतिशय चमत्कार उत्पन्न करने की इच्छा और अतिरिक्त अलंकारों से काव्य को बोझिल करने की उनकी आदत ने उनके काव्य को दुरूह और नीरस भी बना दिया है। अलंकारों के प्रति विशेष मोह और आग्रह होने के कारण पात्रों, परिस्थितियों और कथाक्रम की उपेक्षा करते हुए भी पाये जाते हैं। अकेले 'राम-चन्द्रिका' में उन्होंने इक्यानबे प्रकार के छन्दों का प्रयोग कर यह सिद्ध किया है कि

वे कोई भी छन्द-लिख सकते थे पर प्रबन्ध-पटुता की उन्हें कोई चिन्ता न थी। हाँ, रामचन्द्रिका में संवाद और नाटकीय स्थल सुन्दर बन पड़े हैं। केशव ने पद-रचना की ओर विशेष ध्यान दिया इसलिए भाषा-परिमार्जन की ओर उन्होंने विशेष प्रयत्न नहीं किया। संस्कृत के पंडित होने के कारण भाषा में अनावश्यक दुरूहता का संक्रमण हो गया है।

मतिराम—रीतिकाल के श्रृंगारी कवियों में मतिराम का नाम सबसे पहले लिया जाता है। 'फूल मञ्जरी', 'रसराज,' 'छन्दसार', 'ललित ललाम,' 'मतिराम सतसई,' 'साहित्य सार,' 'लक्षण श्रृंगार' तथा 'अलंकार पंचासिका' के रचनाकार मतिराम मूलतः रससिद्ध कवि हैं। 'रसराज' इनकी अत्यन्त प्रौढ़ एवं सरस रचना है। नायिका-भेद का बड़ा ही ललाम एवं मनोरम वर्णन इस ग्रन्थ की विशेषता है। इनकी कविताओं में सरलता और स्वाभाविकता पायी जाती है। भाव तथा भाषा सभी क्षेत्र में इन्होंने कृत्रिमता का बहिष्कार किया है। मतिराम की भाषा सर्वथा निर्दोष तो नहीं कही जा सकती किन्तु शब्दाडम्बर से वह सर्वथा मुक्त रही है। इन्होंने 'मतिराम सतसई', के दोहों को जो सरसता प्रदान की वह बेजोड़ है। विविध विषयों पर लिखे गये दोहे मतिराम की मौलिक प्रतिभा, सरसता और उनके सौष्ठव का परिचय देते हैं।

बिहारी—केवल एक ग्रन्थ लिखकर प्रसिद्धि के जिस छोर पर बिहारी पहुँचे, उसका मुख्य कारण उनकी कलात्मक सजगता है। 'गागर में सागर' भरनेवाले बिहारी की 'सतसई' भारतीय वाङ्मय की विशाल परम्परा के लगभग अन्तिम छोर पर पड़ती है और अपनी परम्परा को सम्भवतः अन्तिम बिन्दु तक ले जाती है। अपने दोहों को बिहारी ने अधिक व्यंजक, मर्मस्पर्शी, भाववाहक और सुथरा रूप देने का सफल प्रयत्न किया है। बिहारी की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने शब्दालंकारों का प्रयोग करने के साथ-साथ अर्थपरक रमणीयता का सृजन कर उसे रसोद्रेक के लिए सहायक बनाया जबकि अन्य रीतिकालीन कवियों की अलंकार-बहुल पदावली अर्थ-भावहीन और अनुभूतिहीन बनकर रह गई है। अलंकारों का प्रयोग बिहारी ने जब आवेग सहचर के रूप में किया है तब वे काव्य में अधिक प्रभावकारी तेज भर देते हैं। पर आवेग से विच्युत होकर आने वाले अर्थालंकार केवल चमत्कारी उक्ति भर रह जाते हैं। अपने इस प्रयत्न में उनका वर्णन कभी-कभी हास्यास्पद-सा लगने लगता है।

सुन्दर अनुभाव-योजना, बिम्बविधान और चित्रोपमता में बिहारी को अत्यधिक सफलता मिली है। अपेक्षित उपादानों का कुशलतापूर्वक चयन और उनका सुरुचिपूर्ण

संगुफन बिहारी के चित्रों का कलात्मक वैशिष्ट्य है। विरह-वर्णन में बिहारी ने फारसी कवियों का प्रभाव ग्रहण कर अधिकतर ऊहात्मक अभिव्यक्तियाँ ही की हैं; किन्तु स्वाभाविकता का सर्वथा अभाव नहीं है। प्रेम-वर्णन में बिहारी का मौलिकता के प्रति विशेष आग्रह रहा है जिसके कारण उसमें व्यापकता की प्रकाश-किरण का अभाव है।

बिहारी की भाषा शुद्ध एवं साहित्यिक ब्रजभाषा है। शब्दों के चयन में बिहारी ने अतिरिक्त सतर्कता बरती है। बिहारी अपने शब्द-चयन के प्रति इतने सतर्क एवं जागरूक हैं कि अपनी कविता की पच्चीकारी के लिए इन्होंने जो नगीने तराशकर जड़े हैं, उन्हें हटाकर उनके स्थान पर दूसरे नहीं लगाये जा सकते। इनके दोहों में मुहाविरों का भी खुलकर प्रयोग हुआ है। समास-पद्धति के माध्यम से सीमित शब्दों में असीमित बात कह देना बिहारी की निजी विशेषता है। वास्तव में बिहारी एक भाषा-प्रवीण कवि थे।

देव—पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार पच्चीस पुस्तकों के प्रणेता देव रीति-सिद्ध कवि होने के कारण आचार्य भी थे। काव्य का विस्तृत 'कैनवस' अपनाने के कारण इनकी कवित्व-शक्ति-गहन अनुभूति, अर्थरमणीयता और व्यंजना के क्षेत्र में कुंठित हो गई प्रतीत होती है। प्रतिभा के धनी होने के कारण सूक्ष्म कल्पनाओं का आश्रय लेकर कहीं-कहीं अर्थ-सौष्ठव और अभिप्रेत भाव का जैसा निर्वाह देव ने किया है वैसा विरले कवियों में ही प्राप्त होता है।

नायिका-भेद की प्रौढ़तम रचना करनेवालों में देव का स्थान सर्वप्रमुख है। गार्हस्थ्य जीवन के मादक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण में देव की प्रतिभा का लोहा मानना ही पड़ता है। कवित्व शक्ति और मौलिकता से सम्पन्न होने के बाद भी देव में चमत्कार का आग्रह इतना तीव्र था कि वे सुन्दर से सुन्दर भावों को नष्ट होने से नहीं बचा पाते थे। उनके काव्य का मुख्य विषय काव्य और सौन्दर्य है। रीतिकाल में, सौन्दर्य की सीमा नारी के अङ्गों तक ही सीमित हो गई थी। इसलिए नायक-नायिका को शृङ्गार का आलंबन मानकर देव ने विविध स्थितियों को रंग और रेखाओं की सुन्दर नियोजना से इतना व्यापक फलक प्रदान किया कि प्रायः असली तथ्य कहने से रह गया।

भूषण—रीति काल में शृङ्गार को प्रचुर मात्रा में काव्य का विषय बनाने वाले कवियों के बीच वीर रस की भैरवी सुनानेवाले अकेले भूषण ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना को काव्य के धरातल पर प्रतिष्ठित किया। शिवसिंह 'सेंगर' ने इनके चार ग्रन्थों का उल्लेख किया है—'शिवराज भूषण', 'भूषण हजारा' 'भूषण उल्लास' और 'दूषण उल्लास'। इनमें से प्रथम दो ही उपलब्ध हैं। अपने

प्रमुख आश्रयदाता शिवाजी और छत्रसाल सम्बन्धी वीर रस के कवित्त इन्होंने लिखे हैं जिनका प्रकाशन बाद में 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दशक' के नाम से किया गया।

घोर श्रृंगार-युग में वीर रस की रचना करने में भूषण ने अपनी मौलिकता, स्वच्छन्दता और अदम्य व्यक्तित्व का परिचय दिया है। शिवाजी को इन्होंने राष्ट्रीय गौरव, जातीय श्रेष्ठता और परम वीरता का प्रतीक माना है। इनके काव्य में वीर रस के विविध पक्षों की सुन्दर व्यंजना हुई है। संत्रास और भय का मानसिक ऊहापोह, खीझ, व्याकुलता और दीनता आदि से मुक्त शिवाजी का युद्ध में आतंक चित्रित करने में भूषण ने अनेक नवीन उद्भावनाएँ की हैं। वीर रस के अलावा भूषण ने कतिपय श्रृंगारिक पदों की भी रचना की है। इनकी फुटकल रचनाओं की भाषा साफ, स्पष्ट और प्रवाहमयी है। इन्होंने फारसी, अरबी और तुर्की शब्दों का प्रयोग बेलौस किया है।

घन-आनन्द—घनआनन्द उत्तर मध्य युग की रीतिमुक्त काव्यधारा के सर्वप्रमुख कवि हैं। जीवन से विरक्त होकर इन्होंने वृन्दावन में रहते हुए भक्ति-काव्य की रचना भी की किन्तु इनकी अधिकाश कविताएँ श्रृङ्गारिक भावधारा से ही ओत प्रोत हैं। घनआनन्द अन्तर्मुखी भावधारा के विशिष्ट कवि हैं इसीलिए इनकी कविताओं में प्रेम-विरह की अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर्दशाओं का विश्लेषण देखने को मिलता है। प्रेम की इतनी मार्मिक व्यंजना किसी अन्य श्रृङ्गारी कवि में देखने को नहीं मिलती। इन्होंने यद्यपि श्रृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग—को अपनी कविता का विषय बनाया है तथापि वियोगसम्बन्धी पदों के लिए ही ये विशेषरूप से विख्यात हैं। प्रेम और सौन्दर्य के बाह्य निरूपण की अपेक्षा आंतरिक विश्लेषण में ही इनकी मनोवृत्ति अधिक रमी हुई है। यही कारण है कि इनके कवित्तों और सवैयों में विरहानुभूति की सघनता, तीव्रता और संवेदना की प्रधानता पायी जाती है। विरह-पीड़ा की अभिव्यक्ति में इन्होंने बिहारी की-सी ऊहात्मकता का आश्रय न लेकर उसमें स्वाभाविकता का संचार किया है।

जिस प्रकार घनानन्द का अनुभूति-पक्ष अत्यन्त सबल है, उसी प्रकार अभि-व्यंजना-कौशल भी अद्वितीय है। चमत्कारमूलक अलंकारों—विशेष रूप से विरोधा-भास के प्रयोग में ये अत्यन्त सिद्ध हस्त हैं। इन्होंने प्रेम की अनिर्वचनीयता को अपने विरोधाभासों के द्वारा बड़ी कुशलता के साथ व्यक्त किया है। ब्रजभाषा पर जैसा सहज अधिकार घन आनन्द का था, वैसा किसी अन्य ब्रजभाषा कवि का नहीं। भाषा इनकी अनुभूतियों के साथ इतनी घुल-मिल गई थी कि इन्होंने जैसे चाहा, उसे मोड़

लिया। घन आनंद की भाषा-शक्ति की प्रशंसा करते हुए शुक्लजी ने लिखा है—"भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चलाकर इन्होंने उसे अपनी ओर से शक्ति प्रदान की है। घनआनंदजी उन बिरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करनेवाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।" इसमें संदेह नहीं कि लाक्षणिक प्रयोगों के माध्यम से इन्होंने अपनी भाषा को अत्यंत सशक्त बनाया है और भाषा की लाक्षणिकता इनकी मौलिक विशेषता है। ब्रजभाषा-प्रवीण के रूप में इनकी महत्ता स्थापित करते हुए प्राचीन आलोचकों ने इनकी भाषा को समझने के लिए पाठकों का भाषा-प्रवीण होना आवश्यक माना है। निष्कर्ष यह कि घनआनन्द एक प्रतिभाशाली कवि थे जिन्होंने भाव और अभिव्यंजना दोनों दृष्टियों से कविता कामिनी का अभिनव शृङ्गार किया है।

द्विजदेव—रीतिकाल की मुक्तधारा के अंतिम महत्वपूर्ण कवि द्विजदेव का हिन्दी-साहित्य में पदार्पण 'शृङ्गार बत्तीसी' और 'शृङ्गार लतिका' नामक दो रचनाओं के माध्यम से हुआ। भाषा का सहज प्रवाह और भावों का आकर्षक विन्यास इनकी कविता के प्रधान गुण हैं। मतिराम की भाषा की सहजता और सेनापति के परिचित परिवेश का सुन्दर समन्वय इनके काव्य में हुआ है। इनके ऋतुवर्णन में परंपरा से चली आ रही उद्दीपन-सामग्री की गणना कम है किन्तु भावव्यंजना की प्रवृत्ति अधिक है। शृङ्गार के कारण तो इनकी महत्ता है ही, भक्ति के कुछ फुटकल पद भी इन्होंने लिखे हैं।

आधुनिक काल (१८५० से १९००)

रीतिकाल की समाप्ति के पश्चात् हिन्दी-साहित्याकाश में आधुनिकता की क्षीण किरणों का अवतरण होने लगा। इस समय धीरे-धीरे रीति का बोझिल आवरण काव्यदेवी के ऊपर से हटने लगा था। राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक, राज-नैतिक तथा सांस्कृतिक धरातल पर नवजागरण की अंगड़ायी अपनी खुमारी मिटा रही थी। कविता का क्षेत्र भी इससे अछूता न रह सका। पुराना अभी न तो पूरी तरह समाप्त हुआ था और न नये का सर्वथा आगमन ही हो सका था। इसलिए १९वीं शती के उत्तरार्द्ध को सन्धिकाल कहा जा सकता है।

इस युग के कवियों ने अपनी भावनाओं को कविता की स्थापित भाषा ब्रजभाषा में ही व्यक्त किया। यद्यपि भाव और कथ्य के जितने भी सत्यों को उन्होंने स्वीकार किया, वे आधुनिक प्रवृत्ति के ही परिणाम थे। आधुनिक युग के प्रारम्भ होते ही गद्य के माध्यम से आधुनिक प्रवृत्तियों की अभिव्यंजना आरंभ हो गई;

किन्तु पद्य में पुरानी प्रवृत्तियाँ अधिक समय तक चलती रहीं। गद्य की अपेक्षा पद्य में रूढ़ियों का प्रचलन अधिक समय तक होता भी है। आधुनिक चेतना के संक्रमण होने के बाद भी भावों और संस्कारों के क्षेत्र में इस सन्धिकाल के कवियों की प्रवृत्ति परम्परागत भक्ति और रीति की ओर ही अधिक उन्मुख रही। सन्धिकाल के इन कवियों ने परम्परागत भावों और संस्कारों से प्रेरणा तो ली ही, गद्य में प्रयुक्त खड़ी-बोली को काव्य में न अपनाकर ब्रजभाषा को ही अपनी काव्य-भाषा बनाया। ब्रज-भाषा में अपनी अभिव्यक्ति करने वाले कवियों के मानस में आधुनिक परिवेश, विचारों एवं भावराशियों का पूरा सन्निवेश था। इन कवियों के केन्द्रविन्दु थे आधुनिक हिन्दी-साहित्य के जनक भारतेन्दुजी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—काव्य की भावना में जिस प्रकार आधुनिकता का समावेश भारतेन्दुजी ने किया उसी प्रकार भाषा के क्षेत्र में भी उन्होंने पुरातन काव्य के रूढ़ प्रयोगों से मुक्त कर उसे बोलचाल के स्तर पर उतार कर एक क्रांतिकारी मोड़ प्रस्तुत किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी भारतेन्दुजी ने काव्य में समाज-सुधार, राजभक्ति, धर्म, राजभाषा का महत्व आदि विषयों को ग्रहण किया। हिन्दू-जाति के उद्धार के लिए किये गये इनके काव्यात्मक प्रयत्नों में प्रचारक की भावना को भी लोगों ने लक्ष्य किया। काव्य-शिल्प में विविध प्रयोग कर हिन्दी-काव्य में इन्होंने सर्व-प्रथम लोकगीतों का प्रयोग किया। यद्यपि भारतेन्दु ने नये-नये विषयों की ओर कविता को उन्मुख किया है किन्तु किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया। भारतेन्दुजी नर-प्रकृति के कवि थे। बाह्य प्रकृति की अनन्तरूपता के साथ इनके हृदय का तालमेल नहीं बैठ पाया। भारतेन्दु की सहजता, उदारता और उनके प्रगतिशील विचारों ने उन्हें अपने युग का महान् नेता बना दिया। साहित्य के मंच पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का पहला नारा भारतेन्दुजी ने ही दिया था।

रत्नाकर—हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल में रीतिकालीन सामंती प्रवृत्तियों एवं शास्त्रीय आग्रहों को निष्ठापूर्वक अंगीकार करने का रमणीय आदर्श रत्नाकर के ही काव्य में प्रकट हुआ। आधुनिक युग में उत्पन्न होकर तथा अंग्रेजी पढ़कर भी आधुनिक की अपेक्षा प्राचीन में इनकी मनोवृत्ति अधिक लवलीन हुई। 'उद्धव शतक' और 'गंगावतरण' इनकी लोकप्रिय रचनाएं हैं। 'उद्धव शतक' एक प्रबन्धकाव्य है जिसके एक-एक प्रबन्ध कवित्त, मुक्तक का-सा आनन्द देते हैं। छन्द और कवित्त की रीतिकालीन परम्परा के अन्तिम कवि के रूप में रत्नाकर का ऐतिहासिक महत्व है। ब्रजभाषा का रंग इनके काव्य में बड़ी कोमलता के साथ उभरा है। चित्र-योजना, भाव-संप्रेरणा, अलंकारों का सुन्दर प्रयोग और अनूठी कलात्मक प्रौढ़ता इनके काव्य की विशेषता है।

: १ :

कबीर

साखी

बलिहारी गुरु आपणैं, द्यौंहाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तें देवता, करत न लागी बार ॥१·१॥

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहि।
तिहिं घरि किसको चानिणौं, जिहिं घरि गोबिंद नांहि ॥१·२॥

सतगुर हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥१·३॥

बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिह घटि बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥१·४॥

अंबर कुंजा कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि पै गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ॥१·५॥

चकवी बिछुटी रैणि की, आन मिलि परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति ॥१·६॥

तत पाया तन बीसरचा, जब मन धरिया ध्यान।
तपनि गई सीतल भया, जब सुन्नि किया असनान ॥१·७॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नांहि।
सब अँधियारा मिटि गया, (जब) दीपक देख्या मांहि ॥१·८॥

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं ॥१·९॥

हरि रस पीया जांणिये, (जे) कबहुँ न जाइ खुमार।
मैमंता घूमत रहै, नाहीं तन की सार ॥१·१०॥

मैमंता तिण नां चरैं, सालै चिता सनेह।
बारि जु बांध्या प्रेम कै, डारि रह्या सिरि खेह ॥१·११॥

काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, (जे) रहै राम की ओट ॥१·१२॥

साषत बांभण मति मिलैं, बैसनों मिलै चँडाल।
अंक माल दे भेंटिये, मानों मिले गोपाल ॥१·१३॥

खीर रूप हरि नांव है, नीर आन ब्यौहार।
हंस रूप कोइ साध है, तत का जांनणहार ॥१·१४॥

नां कछु किया न करि सक्या, नां करणें जोग सरीर।
जो कछु किया सु हरि किया,(तार्थैं)भया कबीर कबीर ॥१·१५॥

सांई मेरा बांणियां, सहजि करै ब्यौपार।
बिन डांडी बिन पालड़ैं, तौलै सब संसार ॥१·१६॥

कबीर सबद सरीर मैं, बिनु गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, तार्थैं छूटि भरंति ॥१·१७॥

जीवन थैं मरिबो भलौ, जौ मरि जानैं कोइ।
मरनैं पहली जे मरें तो, (कलि) अजरावर होइ ॥१·१८॥

प्रेम न खेती नींपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥१·१९॥

काची काया मन अथिर, थिर थिर कांम करंत।
ज्यूं ज्यूं नर निधड़क फिरै, त्यूं त्यूं काल हसंत ॥१·२०॥

आंगणि बेलि अकासि फल, अणब्यावर को दूध।
ससा-सीग की धूंहड़ी, रमै बाँझ का पूत ॥१·२१॥

कबीर

पद

दुलहनी गावहु मंगलचार।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ॥
तन रत कर मैं, मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती।
रांमदेव मोरै पांहुनैं आये, मैं जोबन मैंमाती ॥
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार।
रांमदेव संग भांवरि लैहूँ, धनि धनि भाग हमार ॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनिबर सहस अठ्यासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ॥१·२२॥
काहे री नलनीं तूं कुमिलांनीं।
तेरैं ही नालि सरोवर पानीं ॥
जल मैं उतपति जल मैं बास। जल मैं नलनीं तोर निवास ॥
ना तलि तपनि न ऊपरि आगि। तोर हेतु कहु कासनि लागि ॥
कहै कबीर जे उदकि समांन। ते नहीं मुए हमारे जान ॥१·२३॥
संतो राह दुनों हम डीठा।
हिंदू तुरक हटा नहीं मनैं, स्वाद सबन्हि को मीठा ॥
हिंदू बरत एकादसि साधैं, दूध सिंघारा सेंती।
अन को त्यागैं मन को न हटकैं, पारन करैं सगोती ॥
तुरुक रोजा निमाज गुजारैं, बिसमिल बांग पुकारैं ॥
इनकी भिस्त कहाँ ते होइहै, साँझैं मुरगी मारैं ॥
हिंदु कि दया मेहर तुरुकन की, दोनौं घट सौं त्यागी।
वै हलाल वै झटके मारैं, आगि दुनौं घर लागी ॥
हिंदु तुरक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, राम न कहेउ खुदाई ॥१·२४॥
अपनपौ आपु ही बिसरो।
जैसे सुनहा कांच मँदिल महँ, भरमते भूँसि मरो (रे) ॥
जौं केहरि बपु निरखि कूप-जल, प्रतिमा देखि परो (रे)।
वैसे ही गज फटिकसिला पर दसनन्हि आनि अरो (रे) ॥
मकरट मूँठि स्वाद नहि बिहुरै, घर घर रटत फिरो (रे)।
कहँहि कबीर ललनी के सुगना, तोहि कवनै पकरो (रे) ॥१·२५॥

अवधू मेरा मन मतिवारा।

उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा ॥
गुड़ करि ग्यांन ध्यांन कर महुवा भव माटी करि मारा।
सुषमन नारी सहजि समांनी, पीवै पीवनहारा ॥
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुयां महारस भारी।
काम क्रोध दोइ दिया पलीता, छूटि गई संसारी ॥
सुंनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृतफल पाया, सहजि सुषमनां काछै ॥
पूरा मिल्या तबैं सुख उपज्यौ, तन की तपति बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ॥१·२६॥

: २ :

जायसी

मानसरोदक खण्ड

एक देवस कौनिउँ तिथि आई। मानसरोदक चली अन्हाई।
पदुमावति सब सखीं बोलाईं। जनु फुलवारि सबै चलि आईं।
कोइ चंपा कोइ कुन्द सहेलीं। कोइ सुकेत करना रस बेलीं।
कोइ सु गुलाल सुदरसन राती। कोइ बकौरि बकचुन बिहँसाती।
कोइ सु बोलसरि पुहुपावती। कोई जाही जुही सेवती।
कोई सोनजरद जेउँ केसरि। कोइ सिगारहार नागेसरि।
कोइ कूजा सदबरग चँबेली। कोई कदम सुरस रस बेली।

भेलीं सबै मालनि सँग फूले कँवल कमोद।
बेधि रहे गन गंध्रप बास परिमलामोद ॥२·१॥

खेलत मानसरोवर गईं। जाइ पालि पर ठाढ़ी भईं।
देखि सरोवर रहसहिं केली। पदुमावति सौं कहहिं सहेलीं।
ऐ रानी मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लहि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जौं खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम कित एह सरवर पाली।
कित आवन पुनि अपने हाथाँ। कित मिलि कै खेलब एक साथाँ।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न आवै देहीं।

पिउ पिआर सब ऊपर सो पुनि करै दहुँ काहुँ।
कहुँ सुख राखै की दुख दहुँ कस जनम निबाहु ॥२·२॥

सरवर तीर पदुमिनी आई। खोंपा छोरि केस मोकराई।
ससि मुख अंग मलैगिरि रानी। नागन्ह झाँपि लीन्ह अरधानी।
ओनए मेघ परी जग छाहाँ। ससि की सरन लीन जनु राहाँ।
छपि गै दिनहि भानु कै दसा। लै निसि लखत चाँद परगसा।
भूलि चकोर दिस्टि तहँ लावा। मेघ घटा महँ चाँद देखावा।
दसन दामिनी कोकिल भाषी। भौंहैं धनुक गगन लै राखी।
नैन खँजन दुइ केलि करेहीं। कुच नारँग मधुकर रस लेहीं।

सरवर रूप बिमोहा हिएँ हिलोर करेइ।
पाय छुअइ मकु पावों तेहि मिसु लहरैं देइ ॥२·३॥

धरीं तीर सब छीपक सारीं। सरवर महँ पैठीं सब बारी।
पाएँ नीर जानु सब बेलीं। हुलसी करहिं काम कै केलीं।
नवल बसंत सँवारहिं करीं। होइ परगट चाहहिं रस भरीं।
करिल केस बिसहर बिसभरे। लहरैं लेहिं कँवल मुख धरे।
उठे कोंप जनु दारिवँ दाखा। भई ओनंत प्रेम कै साखा।
सरवर नहिं समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैठ लिए तारा।
धनि सो नीर ससि तरईं उरईं। अब कत दिस्ट कँवल औ कुईं।

चकई बिछुरि पुकारै कहाँ मिलहु हो नाँह।
एक चाँद निसि सरग पर दिन दोसर जल माँह ॥२·४॥

लागीं केलि करै मँझ नीरा। हंस लजाइ बैठ होइ तीरा।
पदुमावति कौतुक करि राखी। तुम्ह ससि होहु तराइन साखी।
बादि मेलि कै खेल पसारा। हारु देइ जौं खेलत हारा।
सँवरिहि साँवरि गोरिहि गोरी। आपनि आपनि लीन्हि सो जोरी।
बूझि खेल खेलहु एक साथा। हारु न होइ पराएँ हाथा।
आजुहि खेल बहुरि कित होई। खेल गएँ कत खेलै कोई।
धनि सो खेलहि रस पेमा। रौताई औ कूसल खेमा।

मुहमद बारि परेम की जेउँ भावै तेउँ खेलु।
तीलहि फूलहि संग जेउँ होइ फुलाएल तेल ॥२·५॥

सखी एक तेइँ खेल न जाना। चित अचेत भइ हार गँवाना।
कँवल डार गहि भै बेकरारा। कासों पुकारौं आपन हारा।
कत खेलै आइउँ एहि साथाँ। हार गँवाइ चलिउँ सैं हाथाँ।
घर पैठत पूँछब एहि हारू। कौन उतर पाउबि पैसारू।
नैन सीप आँसुन्ह तस भरे। जानहु मोति गिरहिं सब ढरे।
सखिन्ह कहा बोरी कोकिला। कौनु पानि जेहि पौनु न मिला।
हारु गँवाइ सो ऐसेहिं रोवा। हेरि हेराइ लेहु जौं खोवा।

लागीं सब मिलि हेरैं बूड़ि बूड़ि एक साथ।
कोई उठि मोती लै घोंघा काहू हाथ ॥२·६॥

कहा मानसर चहा सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमर तेन्ह पायन्ह परसें। पावा रूप रूप कें दरसें।
मलै समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई।
न जनौं कौनु पौन लै आवा। पुन्नि दसा भै पाप गँवावा।
ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना।
बिगसे कुमुद देखि ससि रेखा। भै तेहि रूप जहाँ जो देखा।
पाए रूप रूप जस चहे। ससि मुख सब दरपन होइ रहे।

नैन जो देखे कँवल भए निरमर नीर सरीर।
हँसत जो देखे हंस भए दसन जोति नग हीर ॥२·७॥

नागमती-विरह

बारहमासा

चढ़ा असाढ़ गँगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।
धूम स्याम धौरे घन धाए। सेत धुजा बगु पाँति देखाए।
खरग बीज चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरिसै घनघोरा।
अद्रा लाग बीज भुइँ लेई। मोहिं पिय बिनु को आदर देई।
ओनै घटा आई चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेझ घट रहै न जीऊ।
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाँह मँदिर को छावा।

जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्ब ॥२·८॥

सावन बरसि मेह अति पानी। भरनि भरइ हौं बिरह झुरानी।
लागु पुनर्बसु पीउ न देखा। भै बाउरि कहँ कंत सरेखा।
रकत क आँसु परे भुइँ टूटी। रेंगि चली जनु बीरबहूटी।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिँडोला। हरियर भुइँ कुसुंभि तन चोला।
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झँकोरा।
बाट असूझ अथाह गँभीरा। जिउ बाउर भा भवै भँभीरा।
जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी।

परबत समुँद अगम बिच बन बेहड़ घन ढंख।
किमि करि भेंटौं कंत तोहि ना मोहि पाँव न पंख ॥२·९॥

भर भादौं दूभर अति भारी। कैसें भरौं रैनि अँधियारी।
मँदिल सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा।
रहौं अकेलि गहें एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी।
चमकि बीज घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।
बरिसै मघा झँकोरि झँकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जस ओरी।
पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी।
धनि सूखी भर भादौं माहाँ। अबहूँ आइ न सीचसि नाहाँ।

जल थल भरे अपूरि सब गँगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन औगाह महँ दे बूड़त पिय टेक ॥२·१०॥

लाग कुआर नीर जग घटा। अबहुँ आउ पिउ परभुमि लटा।
तोहि देखे पिउ पलुहै काया। उतरा चित्त फेरि करु माया।
उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा।
चित्रा मित मीन घर आवा। कोकिल पीउ पुकारत पावा।
स्वाति बुंद चातिक मुख परे। सीप समुंद्र मोंति लै भरे।
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरुरहिं खँजन देखाए।
भए अवगास कास बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहि भूले।

बिरह हस्ति तन सालै खाइ करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर ॥२·११॥

नागमती-विरह

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहैं जारी।
चौदह करा कीन्ह परगासू। जनहुँ जरै सब धरति अकासू।
तन मन सेज करै अगिडाहू। सब कहँ चाँद मोहिं होइ राहू।
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौं घर नाहिन कंत पियारा।
अबहूँ निठुर आव एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।
सखि झूमक गावहिं अँग मोरी। हौं झूरौं बिछुरी जेहि जोरी।
जेहि घर पीउ सो मुनिबर पूजा। मो कहँ बिरह सवति दुख दूजा।

सखि मानहिं तेवहार सब गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कंत बिनु रही छार सिर मेलि ॥२·१२॥

अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुख सो जाइ किमि काढ़ी।
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरै बिरह ज्यों दीपक बाती।
काँपा हिया जनावा पीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ।
घर घर चीर रचा सब काहूँ। मोर रूप रँग लैगा नाहूँ।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै फिरै रँग सोई।
सियरि अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दगधै भै छारा।
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू।

पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआँ हम लाग ॥२·१३॥

पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।
बिरह बाढ़ि भा दारुन सीऊ। कँपि कँपि मरौं लेहि हरि जीऊ।
कंत कहाँ हौं लागौं हियरे। पंथ अपार सूझ नहिं नियरे।
सौर सुपेती आवै जूड़ी। जानहुँ सेज हिवंचल बूड़ी।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं निसि बासर बिरह कोकिला।
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कैसै जिऔं बिछोही पँखी।
बिरह सँचान भँवै तन चाँड़ा। जीयत खाइ मुएँ नहिं छाँड़ा।

रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटहु पंख ॥२·१४॥

लागेउ माँह परै अब पाला । बिरहा काल भएउ जड़काला ।
पहल पहल तन रुई जो झाँपै । हहलि हहलि अधिकौ हिय काँपै ।
आइ सूर होइ तपु रे नाहाँ । तेहि बिनु जाड़ न छूटै माहाँ ।
एहि मास उपजै रस मूलू । तूँ सो भँवर मोर जोबन फूलू ।
नैन चुवहिं जस माँहुट नीरू । तेहि जल अंग लाग सर चीरू ।
टूटहिं बुंद परहिं जस ओला । बिरह पवन होइ मारै झोला ।
केहिक सिंगार को पहिर पटोरा । गियँ नहिं हार रही होइ डोरा ।

तुम्ह बिनु कंता धनि हरुइ तन तिनुवर भा डोल ।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल ।।२·१५।।

फागुन पवन झँकोरै बहा । चौगुन सीउ जाइ किमि सहा ।
तन जस पियर पात भा मोरा । बिरह न रहै पवन होइ झोरा ।
तरिवर झरै झरै बन ढाँखा । भइ अनपत्त फूल फर साखा ।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू । मो कहँ भा जग दून उदासू ।
फाग करहिं सब चाँचरि जोरी । मोहिं जिय लाइ दीन्ह जसि होरी ।
जौं पै पियहिं जरत अस भावा । जरत मरत मोहिं रोस न आवा ।
रातिहु देवस इहै मन मोरें । लागौं कंत छार जेउँ तोरें ।

यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहँ पाउ ।।२·१६।।

चैत बसंता होइ धमारी । मोहि लेखें संसार उजारी ।
पंचम बिरह पंच सर मारैं । रकत रोइ सगरी बन ढारैं ।
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता । भीज मंजीठ टेसू बन राता ।
मौरें आँब फरै अब लागे । अबहुँ सँवरि घर आउ सभागे ।
सहस भाव फूली बनफती । मधुकर फिरै सँवरि मालती ।
मोकहँ फूल भए जस काँटे । दिस्टि परत तन लागहिं चाँटे ।
भरु जोबन एहु नारँग साखा । सोवा बिरह अब जाइ न राखा ।

घिरिनि परेवा आव जस आइ परहु पिय टूटि ।
नारि पराएँ हाथ है तुम्ह बिनु पाव न छूटि ।।२·१७।।

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोवा चीर चँदन भा आगी।
सूरज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौहँ रथ हाँका।
जरत बजागिनि होउ पिय छाँहा। आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि सों करु फुलवारी।
लागिउँ जरै जरै जस भारू। बहुरि जो भूँजसि तजौं न बारू।
सरवर हिया फटत निति जाई। टूक टूक होइ होइ बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दिस्टि दवँगरा मेरवहु एका।

कँवल जो बिगसा मानसर छारहिं मिलै सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौं पिय सींचहु आइ ॥२१८॥

जेठ जरै जग बहै लुवारा। उठै बवंडर धिकै पहारा।
बिरह गाजि हनिवँत होइ जागा। लंका डाह करै तन लागा।
चारिहुँ पवन झँकोरै आगी। लंका डाहि करै तन लागी।
दहि भइ स्याम नदी कालिंदी। बिरह कि आगि कठिन असि मंदी।
ऊठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ मरौं दुख बाँधी।
अधजर भई माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काग होइ भूखा।
माँसु खाइ अब हाँड़न्ह लागा। अबहुँ आउ आवत सुनि भागा।

परबत समुँद मेघ ससि दिनअर सहि न सकहि यह आगि।
मुहमद सती सराहिअै जरै जो अस पिय लागि ॥२१९॥

तँपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।
तन तिनुवर भा झूरौं खरी। भै बिरहा आगरि सिर परी।
साँठि नाहिं लागि बात को पूँछा। बिनु जिय भएउ मूँज तन छूँछा।
बंध नाहिं और कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।
ररि दूबर भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।
बरिसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाँहाँ।
को रे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।

अबहूँ दिस्टि मया करु छान्हिन तजु घर आउ।
मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ ॥२२०॥

सलिल कौ सब रंग तजि कै, एक रंग मिलाइ।
सूर जो है रंग त्यागै, यहै भक्त सुभाइ ।।३·३।।

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध को पहरि चोलना, कंठ बिषय की माल ।।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सबद-रसाल।
भरम-भर्‌यौ मन भयौ पखावज, चलत असंगति चाल ।।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यों, लोभ - तिलक दियो भाल ।।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अबिद्या, दूरि करौ नंदलाल ।।३·४।।

वा पट पीत की फहरानि।
कर धरि चक्र, चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बानि ।।
रथ तें उतरि चलनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि।
मानौ सिंह सैल तें निकस्यौ, महामत्त गज जानि ।।
जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यो, मेटि बेद की कानि।
सोई सूर सहाइ हमारे, निकट भए हैं आनि ।।३·५।।

खेलत नंद-आँगन गोबिंद।
निरखि-निरिखि जसुमति सुख पावति, बदन मनोहर इंदु ।।
कटि किंकिनी चंद्रिका मानिक, लटकन लटकत भाल।
परम सुदेस कंठ केहरि-नख, बिच-बिच बज्र प्रवाल ।।
कर पहुँची, पाइनि मैं नूपुर, तन राजत पटपीत।
घुटुरुनि चलत, अजिर महँ बिहरत, मुख मंडित नवनीत ।।
सूर बिचित्र चरित्र स्याम के, रसना कहत न आवैं।
बाल दसा अवलोकि सकल मुनि, जोग बिरति बिसरावैं ।।३·६।।

कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई ?
खेलत कुँवर कनक-आँगन मैं नैन निरखि छबि पाई ।।
कुलही लसति सिर स्यामसुंदर के बहु बिधि सुरँग बनाई।

मानौं नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई ।।
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई ।
मानौं प्रगट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई ।।
नील, सेत अरु पीत, लाल मनि लटकन भाल रुनाई ।
सनि, गुरु-असुर, देवगुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई ।।
दूध-दंत दुति कहि न जाति कछु अद्भुत उपमा पाई ।
किलकत हँसत दुरति प्रगटति मनु, घन मैं बिज्जु छपाई ।।
खण्डित बचन देत पूरन सुख अलप-अलप जलपाई ।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, सूरदास बलि जाई ।।३७।।

हरि जू की बाल-छबि कहौं बरनि ।
सकल सुख की सींव, कोटि-मनोज-सोभा-हरनि ।।
भुज-भुजङ्ग, सरोज नैननि, बदन बिघु जिते लरनि ।
रहे बिबरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ।।
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि ।
मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फरयौ अद्भुत फरनि ।।
चलत पद-प्रतिबिम्ब मनि आँगन घुटुरुवनि करनि ।
जलज-सम्पुट-सुभग-छबि भरि लेति उर जनु धरनि ।।
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि ।
सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि ।।३८।।

सखा कहत हैं स्याम खिसाने ।
आपुहि आपु बलकि भए ठाढ़े अस तुम कहा रिसाने ।।
बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप ।
हारि-जीत कछु नेकु न समुझत, लरिकनि लावत पाप ।।
आपुन हारि सखनि सौं झगरत यह कहि दियौ पठाइ ।
सूर स्याम उठि चले रोइ कै, जननी पूछति धाइ ।।३९।।

कुँअर जल लोचन भरि-भरि लेत ।
बालक बदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचेत ।।
छोरि उदर तें दुसह दाँवरी, डारि कठिन कर बेंत ।
कहि धौं री तोहिं क्यों करि आवै, सिसु पर तामस एत ।।

जौ आँवों घट दहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै ।
जौ धरि बीज देह अंकुर चिरि तौ सत फरनि फरै ।।
जौ सर सहत सुभट सम्मुख रन तौ रबि रथहि सरै ।
'सूर' गोपाल प्रेम-पथ चलतें कोउ न दुखहि डरै ।।३·२२।।

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
मूरी के पातनि के बदलें, को मुक्ताहल दैहै ।।
यह ब्यौपार तुम्हारो ऊधो, ऐसे ही धरचो रैहै ।
जिन पै तें लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै ।।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै ।
गुन करि मोही 'सूर' साँवरे को निरगुन निरबैहै ।।३·२३।।

स्याम सखी कारेहु मैं कारे ।
तिनसौं प्रीति कहा कहि कीजै, मारग छाँड़ि सिधारे ।।
लोक चतुरदस बिभव कहत हैं, पदुमपत्र जल न्यारे ।
सरवर त्यागि बिहंग उड़ै ज्यों, फिरि पाछे न निहारे ।।
तब चित चोरि भोरि ब्रजबासिनि, प्रेम नेम ब्रत टारे ।
लै सरबस नहिं मिले 'सूर' प्रभु, कहियत कुटिल बिचारे ।।३·२४।।

बिरही कहँ लौं आपु सँभारै ।
जब तें गंग परी हरि-पद तें, बहिबो नाहिं निवारै ।।
नयनन तें रबि बिछुरि भँवत रहै, ससि अजहुँ तन गारै ।
नाभि तें बिछुरे कमल कंट भए, सिंधु भए जरि छारै ।।
बैन तें बिछुरी बानि अबिधि भई बिधि ही कौन निवारै ।
'सूरदास' सब अँग तें बिछुरी केहि बिधा उपचारै ।।३·२५।।

कहत कत परदेसी की बात ।
मंदिर अरध अवधि बदि हमसों हरि अहार चलि जात ।।
ससिरिपु बरस सूररिपु जुग बर, हररिपु किए फिरै घात ।
मघपंचक लै गए स्यामघन, आय बनी यह बात ।।
नखत बेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात ।
सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीड़ति पछितात ।।३·२६।।

मुख आँसू अरु माखन-कनुका, निरखि नैन छबि देत ।
मानौ स्रवत सुधानिधि मोती, उडुगन अवलि समेत ।।
ना जानौ किहि पुन्य प्रगट भए इहि ब्रज नन्द-निकेत ।
तन-मन-धन न्यौछावरि कीजै सूर स्याम के हेत ।।३·१०।।

माधौ मोहिं करौ वृन्दाबनरेनु ।
जिहिं चरननि डोलत नंद-नंदन, दिन-प्रति बन-बन चारत धेनु ।।
कहा भयौ यह देव-देह धरि, अद ऊँचे पद पाएँ ऐनु ।
सब जीवनि लै उदर माँझ प्रभु महा प्रलय-जल करत हौ सैनु ।।
हम तें धन्य सदा वै तृन-द्रुम, बालक-बच्छ बिषान रु बेनु ।
सूर स्याम जिनके सँग डोलत, हँसि बोलत, मथि पीवतु फेनु ।।३·११।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।
सुन री सखी जदपि नँदनंदहिं नाना भाँति नचावति ।।
राखति एक पाँय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति ।
कोमल अंग आपु, आज्ञा गुरु, कटि टेढ़ी ह्वै जावति ।।
अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नारि नवावति ।
आपुन पौढ़ि अधर-सेज्या पर कर सों पद पलुटावति ।।
भृकुटी कुटिल फरक नासा पुट हम पै कोपि कुपावति ।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन अधर सुसीस डुलावति ।।३·१२।।

हमारे हरि हारिल की लकरी ।
मन बच क्रम नँदनंदन सों उर, यह दृढ़ करि पकरी ।।
जागत सोवत सपने सौंतुख कान्ह कान्ह जक री ।
सुनतहिं जोग लगत ऐसो अलि ज्यों करुई ककरी ।।
सोई ब्याधि हमैं लै आए देखी सुनी न करी ।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी ।।३·१३।।

खंजन नैन रूप रसमाते ।
अतिसय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ।।

बसे कहूँ कोइ बात सखी, कह रहे इहाँ किहि नातें।
सोइ संज्ञा देखति औरासी, बिकल उदास कला तें॥
चलि चलि जात निकट स्रवननि के कटि ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजन गुन अटके, नतरु कबै उड़ि जाते॥३·१४॥

कुबिजा नहिं तुम देखी है।
दधि बेचन जब जाति मधुपुरी, मैं नीकै करि पेखी है॥
महल निकट माली की बेटी, देखत जिहि नरनारि हँसैं।
कोटि बार पीतरि जौ दाहौ, कोटि बार जो कहा कसै॥
सुनियत ताहि सुंदरी कीन्हीं, आपु भए ताको राजी।
'सूर' मिलै मन जाहि जाहि सौं, ताको कहा करै काजी॥३·१५॥

पिया बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात॥
जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात।
'सूर' स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि मुरि लहरैं खात॥३·१६॥

देखियत चहुँ दिसि तें घन घोरे।
मानों मत्त मदन के हथियनि, बल करि बंधन तोरे॥
स्याम सुभग तन चुवत गंडमद, बरषत थोरे थोरे।
रुकत न पवन महावतहूँ तें, मुरत न अंकुस मोरे॥
मनों निकसि बग पंक्ति दंत उर अवधि सरोवर फोरे।
बिनु बेला बल निकसि नयन जल, कुच कंचुकि बँद बोरे॥
तब तिहिं समय आनि ऐरावति, ब्रजपति सों कर जोरे।
अब सुनि 'सूर' कान्ह केहरि बिनु, गरत गात जैसे ओरे॥३·१७॥

कोउ माई बरजै री या चंदहि।
अति ही क्रोध करत है हम पै, कुमुदिनि कुल आनंदहि॥
कहा कहौं बरषा रबि तमचुर, कमल बलाहक कारे।
चलत न चपल रहत थिर कै रथ, बिरहिनि के तन जारे॥
निंदति सैल उदधि पन्नग को, श्रीपति कमठ कठोरहि।
देति असीस धरा देवी को, राहु केतु किन जोरहि॥

सँदे ... तलफति, ऐसी गति ब्रजबालहिं।
हौं ... मेलावहु, मोहन मदन गुपालहिं ॥३·१८॥

उब ... बिचारो।
जो ... आपनी जोग कथा बिस्तारो ॥
तुम ... माधौ, सो सोचो जिय माहीं।
प्रात ... रमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं ॥
अब ... यत हौ, संतन निकट रहत हौ।
मेरे ... कौं, फिरि फिर कहा गहत हौ ॥
ऊधौ ... चितवनि, कैसे उर तें टारौं।
हंससु ... परम निधि, वा मुरली पर वारौं ॥
वै सु ... बसत हैं, तिहि निरगुन क्यों आवै।
ग्वाल ... बहाऊँ, जाहि दूसरो भावै ॥३·१९॥

यह म ... ।
जबहिं ... दनंदन ता दिन तें यह पोच ॥
अनगन ... घर हँसि करि भुजा गही।
'सूरदा ... निंदिया निमिष न और रही ॥
... देखिकैं आनंदी पिय जानि।
ब्रज प ... धाता चपल कियो जल आनि ॥३·२०॥

कहियो
जलद ... री।
गरजन ... ीति बिनु करत कुसुम रस केली ॥
लेहु ... ड़ाई पोसी प्याई पानी।
दादुर ... फूलत होत सदा हित हानी ॥
ऊधौ ... न अरुझीं स्याम तमालहिं।
रखि ... रे बिलसत मधुप गोपालहिं ॥
बूझहि ... ोलत रूप डार ढिग लागी।
नैकु ... पे तें कमलनयन अनुरागी ॥३·२१॥

परम
बारे ... हे पुट गहि रसहि परै ॥

जौ आँवों घट दहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै ।
जौ धरि बीज देह अंकुर चिरि तौ सत फरनि फरै ।।
जौ सर सहत सुभट सम्मुख रन तौ रबि रथहि सरै ।
'सूर' गोपाल प्रेम-पथ चलतें कोउ न दुखहि डरै ।।३·२२।।

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
मूरी के पातनि के बदलें, को मुक्ताहल दैहै ।।
यह ब्यौपार तुम्हारो ऊधो, ऐसे ही धरयो रैहै ।
जिन पै तैं लै आए ऊधो, तिनहिं के पेट समैहै ।।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै ।
गुन करि मोही 'सूर' साँवरे को निरगुन निरबैहै ।।३·२३।।

स्याम सखी कारेहु मैं कारे ।
तिनसौं प्रीति कहा कहि कीजै, मारग छाँड़ि सिधारे ।।
लोक चतुरदस बिभव कहत हैं, पदुमपत्र जल न्यारे ।
सरवर त्यागि बिहंग उड़ै ज्यों, फिरि पाछे न निहारे ।।
तब चित चोरि भोरि ब्रजबासिनि, प्रेम नेम ब्रत टारे ।
लै सरबस नहिं मिले 'सूर' प्रभु, कहियत कुटिल बिचारे ।।३·२४।।

बिरही कहँ लौं आपु सँभारै ।
जब तें गंग परी हरि-पद तें, बहिबो नाहिं निवारै ।।
नयनन तें रबि बिछुरि भँवत रहै, ससि अजहुँ तन गारै ।
नाभि तें बिछुरे कमल कंट भए, सिंधु भए जरि छारै ।।
बैन तें बिछुरी बानि अबिधि भई बिधि ही कौन निवारै ।
'सूरदास' सब अँग तें बिछुरी केहि बिधा उपचारै ।।३·२५।।

कहत कत परदेसी की बात ।
मंदिर अरध अवधि बदि हमसों हरि अहार चलि जात ।।
ससिरिपु बरस सूररिपु जुग बर, हररिपु किए फिरै घात ।
मघपंचक लै गए स्यामघन, आय बनी यह बात ।।
नखत बेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात ।
सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीड़ति पछितात ।।३·२६।।

सँदेशो देवकी सों कहियो।

हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो ॥
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती करम करम करि न्हाते ॥
तुम तो टेव जानतिहि ह्वैहौ तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहि माखन रोटी भावै ॥
अब यह 'सूर' मोहिं निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वैहैं करत सँकोच ॥३·२७॥

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।

हंससुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजनि की छाहीं ॥
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल मिलि करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनिमुक्ताहल जाहीं।
जबहि सुरति आवति वा सुख की, जिय उमँगत तन नाहीं ॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं ॥३·२८॥

ब्रज पर मँडर करत है काम।

कहियो पथिक स्याम सों राखैं, आइ आपनो धाम ॥
जलद कमान भरि दारू भरि, तड़ित पलीता देत।
गर्जन अरु तड़पन मनु गोला, पहरक मैं गढ़ लेत ॥
लेहु लेहु सब करत बंदिजन कोकिल चातक मोर।
दादुर निकर करत जो टोवा, पल पल पै चहुँ ओर ॥
ऊधौ मधुप जसूस देखि गयो, टूटयो धीरज पानि।
रखिबै होइ तौ आनि राखिये, 'सूर' लोक निज जानि ॥३·२९॥

बूझति है रुकुमिनि पिय इनमैं को वृषभानुकिसोरी।
नैंकु हमें दिखरावहु अपनी बालापन की जोरी ॥
परम चतुर जिन कीन्हें मोहन, अल्प बैस ही थोरी।
बारे तें जिहि यहै पढ़ायौ, बुधि बल कल बिधि चोरी ॥

जाके गुन गनि ग्रंथित माला, कबहुँ न उर तें छोरी।
मनसा सुमिरन, रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत उत मोरी।
वह लखि जुवतिबृंद मैं ठाढ़ी, नील बसन तन गोरी।
'सूरदास' मेरो मन वाकी, चितवनि बंक हरयौ री ॥३'३०॥



ज्यों जलहीन मीन तन तलफति, ऐसी गति ब्रजबालहिं ।
'सूरदास' अब आनि मिलावहु, मोहन मदन गुपालहिं ।।३·१८।।

ऊधो तुम ब्रज की दसा बिचारो ।

ता पाछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा बिस्तारो ।।
जा कारन तुम पठए माधौ, सो सोचो जिय माहीं ।
केतिक बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं ।।
तुम परबीन चतुर कहियत हौ, संतन निकट रहत हौ ।
जल बूड़त अवलंब फेन कों, फिरि फिर कहा गहत हौ ।।
वह मुसकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तें टारों ।
जोग जुक्ति अरु मुक्ति परम निधि, वा मुरली पर वारों ।।
जिहि उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहि निरगुन क्यों आवै ।
'सूरदास' सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरो भावै ।।३·१९।।

हमको सपनेहूँ मैं सोच ।

जा दिन तें बिछुरे नँदनंदन ता दिन तें यह पोच ।।
मनो गोपाल आए मेरे घर हँसि करि भुजा गही ।
कहा करों बैरिनि भइ निंदिया निमिष न और रही ।।
ज्यों चकई प्रतिबिंब देखिकैं आनंदी पिय जानि ।
'सूर' पवन मिस निठुर बिधाता चपल कियो जल आनि ।।३·२०।।

मधुकर हम न होहिं वे बेली ।

जिनकी तुम तजि भजत प्रीति बिनु करत कुसुम रस केली ।।
बारे तें बलबीर बढ़ाई पोसी प्याई पानी ।
बिन पिय परस प्रात उठि फूलत होत सदा हित हानी ।।
ये बल्ली बिहरत बृन्दाबन अरुझीं स्याम तमालहिं ।
प्रेम पुष्प रज बास हमारे बिलसत मधुप गोपालहिं ।।
जोग समीर धीर नहिं डोलत रूप डार ढिग लागी ।
'सूर' पराग न तजत हिये तें कमलनयन अनुरागी ।।३·२१।।

ऊधो बिरहौ प्रेमु करै ।
ज्यों बिनु पुट पट गहै न रंगहि पुट गहि रसहि परै ।।

जौ आँवों घट दहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै ।
जौ धरि बीज देह अंकुर चिरि तौ सत फरनि फरै ।।
जौ सर सहत सुभट सम्मुख रन तौ रबि रथहि सरै ।
'सूर' गोपाल प्रेम-पथ चलतें कोउ न दुखहि डरै ।।३·२२।।

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
मूरी के पातनि के बदलें, को मुक्ताहल दैहै ।।
यह ब्यौपार तुम्हारो ऊधो, ऐसे ही धरचो रैहै ।
जिन पै तें लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै ।।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै ।
गुन करि मोही 'सूर' साँवरे को निरगुन निरबैहै ।।३·२३।।

स्याम सखी कारेहु मैं कारे ।
तिनसौं प्रीति कहा कहि कीजै, मारग छाँड़ि सिधारे ।।
लोक चतुरदस बिभव कहत हैं, पदुमपत्र जल न्यारे ।
सरवर त्यागि बिहंग उड़ै ज्यों, फिरि पाछे न निहारे ।।
तब चित चोरि भोरि ब्रजबासिनि, प्रेम नेम ब्रत टारे ।
लै सरबस नहिं मिले 'सूर' प्रभु, कहियत कुटिल बिचारे ।।३·२४।।

बिरही कहँ लौं आपु सँभारै ।
जब तें गंग परी हरि-पद तें, बहिबो नाहिं निवारै ।।
नयनन तें रबि बिछुरि भँवत रहै, ससि अजहुँ तन गारै ।
नाभि तें बिछुरे कमल कंट भए, सिंधु भए जरि छारै ।।
बैन तें बिछुरी बानि अबिधि भई बिधि ही कौन निवारै ।
'सूरदास' सब अँग तें बिछुरी केहि बिधा उपचारै ।।३·२५।।

कहत कत परदेसी की बात ।
मंदिर अरध अवधि बदि हमसों हरि अहार चलि जात ।।
ससिरिपु बरस सूररिपु जुग बर, हररिपु किए फिरै घात ।
मघपंचक लै गए स्यामघन, आय बनी यह बात ।।
नखत बेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात ।
सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीड़ति पछितात ।।३·२६।।

सँदेशो देवकी सों कहियो ।

हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो ।।
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते ।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती करम करम करि न्हाते ।।
तुम तो टेव जानतिहि ह्वैहो तऊ मोहि कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहि माखन रोटी भावै ।।
अब यह 'सूर' मोहिं निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच ।
मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वैहैं करत सँकोच ।।३·२७।।

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।

हंससुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजनि की छाहीं ।।
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
ग्वालबाल मिलि करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं ।।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनिमुक्ताहल जाहीं ।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमँगत तन नाहीं ।।
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं ।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं ।।३·२८।।

ब्रज पर मँडर करत है काम ।

कहियो पथिक स्याम सों राखैं, आइ आपनो धाम ।।
जलद कमान बरि दारू भरि, तड़ित पलीता देत ।
गरजन अरु तड़पन मनु गोला, पहरक मैं गढ़ लेत ।।
लेहु लेहु सब करत बंदिजन कोकिल चातक मोर ।
दादुर निकर करत जो टोवा, पल पल पै चहुँ ओर ।।
ऊधौ मधुप जसूस देखि गयो, टूट्यो धीरज पानि ।
रखिबै होइ तौ आनि राखिये, 'सूर' लोक निज जानि ।।३·२९।।

बूझति है रुकुमिनि पिय इनमैं को बृषभानुकिसोरी ।
नैकु हमें दिखरावहु अपनी बालापन की जोरी ।।
परम चतुर जिन कीन्हें मोहन, अल्प बैस ही थोरी ।
बारे तें जिहि यहै पढ़ायौ, बुधि बल कल बिधि चोरी ।।

जाके गुन गनि ग्रंथित माला, कबहुँ न उर तें छोरी।
मनसा सुमिरन, रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत उत मोरी।
वह लखि जुवतिबृंद मैं ठाढ़ी, नील बसन तन गोरी।
'सूरदास' मेरो मन वाकी, चितवनि बंक हरचौ री ॥३·३०॥



: ८ :

रसखानि

मानुस हौं तौ वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धरयौ कर छत्र पुरंदर-धारन।
जौ खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन ॥४·१॥

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं।
रसखानि जबै इन नैनन तें ब्रज के बन-बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥४·२॥

बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरैं अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी ॥४·३॥

सेष गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सु बेद बतावैं।
नारद-से सुक ब्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं॥
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥४·४॥

ब्रह्म मैं ढूँढयौ पुरानन गानन बेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कहूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि परयौ रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुंज-कुटीर मैं बैठो पलोटत राधिका-पायन ॥४·५॥

रसखानि

भौंह भरी सुथरी बरुनी अति ही अधरानि रच्यौ रँग रातो।
कुंडल लोल कपोल महाछबि कुंजन तें निकस्यौ मुसकातो।
छूटि गयो रसखानि लखें उर भूलि गई तन की सुधि सातो।
फूटि गयो सिर तें दधि भाजन टूटि गो नैननि लाज को नातो ।।४·६।।

काननि दै अँगुरी रहिबो जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै।
मोहनि ताननि सों रसखानि अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै।
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ सु कितो समुझैहै।
माई री वा मुख की मुसकानि सम्हारि न जैहै न जैहै ।।४·७।।

कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहिहै।
निस-द्यौस रहै सँग साथ लगी यह सौतिन तापन क्यौं सहिहै।
जिन मोहि लियो मनमोहन कों रसखानि सदा हमको दहिहै।
मिलि आओ सबै सखी, भागि चलैं अब तौ ब्रज मैं बँसुरी रहिहै ।।४·८।।

उनहीं के सनेहन सानी रहैं उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं।
उनहीं की सुनैं न औ बैन त्यौं सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं।
उनहीं सँग डोलन मैं रसखानि सबै सुखसिंधु अघानी रहैं।
उनहीं बिनु ज्यौं जलहीन ह्वै मीन-सी आँखि मेरी अँसुवानी रहैं ।।४·९।।

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारन संग फिरौंगी।
भावतो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहें सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी ।।४·१०।।

: ५ :

तुलसी

भरत–चरित

मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीरु दुख भारु।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसारु ॥१॥

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई ॥
देखत भरतु बिकल भये भारी। परे चरन तन दसा बिसारी ॥
मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कइकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥
कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहिं सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥
पितु सुरपुर बन रघुबरकेतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिग मोहि भएउँ बेनुबन आगी। दुसह दाह दुख दूखन भागी ॥

मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥५·१॥

सरल सुभाय भाय हिय लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदय समाई ॥
देखि सुभाउ कहत सब कोई। राममातु अस काहे न होई ॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरजु धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी ॥
काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहु दुख मोहिं जिआवा। अजहुँ को जानै का तेहि भावा ॥

पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर ॥५·२॥

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ।।
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ।।
सुनतहिं लखनु चले उठि साथा । रहहिं न जतन किये रघुनाथा ।।
तब रघुपति सबही सिरु नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ।।
रामु लखनु सिय बनहिं सिधाये । गइउँ न संग न प्रान पठाये ।।
यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे । तउ न तजा तनु जीव अभागे ।।
मोहिं न लाज निज नेहु निहारी । राम सरिस सुत मैं महतारी ।।
जिअइ मरइ भल भूपति जाना । मोर हृदय सत कुलिस समाना ।।

कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु ।
ब्याकुल बिलपत राजगृहु मानहु सोक निवासु ।।५.३।।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई । कौसल्या लिए हृदय लगाई ।।
भाँति अनेक भरतु समुझाये । कहि बिबेकमय बचन सुहाये ।।
भरतहु मातु सकल समुझाई । कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई ।।
छल-बिहीन सुचि सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुग पानी ।।
जे अघ मातु पिता सुत मारे । गाइगोठ महिसुरपुर जारे ।।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हे । मीत महीपति माहुर दीन्हे ।।
जे पातक उपपातक अहहीं । करम बचन मन भव कबि कहहीं ।।
ते पातक मोहिं होहु बिधाता । जौं यह होइ मोर मत माता ।।

जे परिहरि हरिहर चरन भजहिं भूतगन घोर ।
तिन्ह कइ गति मोहिं देउ बिधि जौं जननी मत मोर ।।५.४।।

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं । पिसुन पराय पाप कहि देहीं ।।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी । बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ।।
लोभी लंपट लोलुप चारा । जे ताकहिं पर धनु पर दारा ।।
पावउँ मैं तिन्हकै गति घोरा । जौं जननी एहु संमत मोरा ।।
जे नहिं साधु संग अनुरागे । परमारथ पथ बिमुख अभागे ।।
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई । जिन्हहिं न हरिहर सुजसु सोहाई ।।
तजि स्रुतिपंथ बाम पथ चलहीं । बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं ।।
तिन्ह कइ गति मोहिं संकरु देऊ । जननी जौं एहु जानउँ भेऊ ।।

मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभाय।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन काय ।।५.५।।

राम प्रानहुँ तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रानहु तें प्यारे ।।
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी ।।
भये ग्यानु बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू ।।
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ।।
अस कहि मातु भरतु हिय लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए ।।
करत बिलाप बहुत एहि भाँति। बैठेहिं बीति गई सब राती ।।
बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बुलाए ।।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे ।।

तात हृदय धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरतुगुर बचन सुनि करन कहेहु सबु साजु ।।५.६।।

नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा। परम बिचित्रु बिमानु बनावा ।।
गहि पद भरत मातु सब राखीं। रहीं राम दरसन अभिलाखीं ।।
चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए ।।
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई ।।
एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्हीं। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्हीं ।।
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना ।।
जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा ।।
भये बिसुद्ध दिये सबु दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना ।।

सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम ।।५.७।।

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ।।
सुदिन सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ।।
बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई ।।
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे ।।
प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कइकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी ।।
भूप धरम ब्रतु सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा ।।

कहत राम गुन सील सुभाऊ । सजल नयन पुलके मुनिराऊ ।।
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी । सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी ।।
सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ।।५.८।।
अस बिचारि केहि देइअ दोसू । ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू ।।
तात बिचारु करहु मन माहीं । सोच जोगु दसरथ नृपु नाहीं ।।
सोचिअ बिप्र जो बेदबिहीना । तजि निज धरमु बिषय लयलीना ।।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।।
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू । जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ।।
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी । मुखरु मानप्रिय ग्यान गुमानी ।।
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ।।
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई । जो नहिं गुर आयसु अनुसरई ।।
सोचिअ गृही जो मोहबस करइ करमपथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग ।।५.९।।
बैखानस सोइ सोचइ जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ।।
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ।।
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी । निज तनु पोषक निरदय भारी ।।
सोचनीय सबही बिधि सोई । जो न छाँड़ि छलु हरिजन होई ।।
सोचनीय नहिं कोसलराऊ । भुअन चारि दस प्रगट प्रभाऊ ।।
भएउ न अहइ न अब होनिहारा । भूपु भरत जस पिता तुम्हारा ।।
बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा । बरनहिं सब दसरथ गुनगाथा ।।
कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु ।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु ।।५.१०।।
सब प्रकार भूपति बड़भागी । बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ।।
एहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू । सिर धरि राज रजायसु करहू ।।
राय राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा । पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ।।
तजे रामु जेहि बचनहि लागी । तनु परिहरेउ राम बिरहागी ।।
नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना । करहु तात पितु बचन प्रमाना ।।
करहु सीस धरि भूप रजाई । हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ।।

परसुराम पितु आग्या राखी । मारी मातु लोक सब साखी ।।
तनय जजातिहिं जोबनु दयेऊ । पितु अग्या अघ अजसु न मयऊ ।।

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बयन ।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति अयन ।।५·११।।

अवसि नरेस बचन फुर करहू । पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ।।
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू । तुम्ह कहँ सुकृतु सुजसु नहिँ दोषू ।।
बेद बिदित संमत सबही का । जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ।।
करहु राज परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचनु हित जानी ।।
सुनि सुख लहब राम बैदेही । अनुचित कहब न पंडित केही ।।
कौसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजासुख होहिँ सुखारी ।।
परम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि ।।
सौंपेहु राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ।।

कीजिय गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि ।।५·१२।।

कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुर आयसु अहई ।।
सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषादु कालगति जानी ।।
बन रघुपति सुरपति नरनाहू । तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू ।।
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा । तुमहीं सुत सब कहँ अवलंबा ।।
लखि बिधि बाम काल कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ।।
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू । प्रजा पालि पुरजन दुखु हरहू ।।
गुर के बचन सचिव अभिनंदनु । सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ।।

सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भये ।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये ।।
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहिँ सुधि देह की ।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की ।।
भरतु कमल कर जोरि, धीर धुरंधर धीर धरि ।
बचन अमिअ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहिँ ।।५·१३।।

मोहिं उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सब ही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा॥
गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित कियें बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥
तुम्ह तो देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोषु न जी कें॥
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहिं अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

पितु सुरपुर सिय राम बन करन कहहु मोहिं राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥५·१४॥

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय पद बिनु देखें॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा॥
जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई॥
जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू॥
मोहि नृपु करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥

कैकेईसुअ कुटिल मति राम बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुख मोहबस मोहि-से अधम के राज॥५·१५॥

कहौं साचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू॥
मोहिं राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥
मोहिं समान को पाप-निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू॥
रायँ राम कहुँ काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा॥
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥
राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे॥
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई॥

कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥५·१५॥

कैकेईभव तनु अनुरागे । पावन प्रान अघाइ अभागे ।।
जौं प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे । देखब सुनब बहुत अब आगे ।।
लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा । पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ।।
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू । दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू ।।
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू । कीन्ह कइकई सब कर काजू ।।
एहि तें मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ।।
कइकइ जठर जनमि जग माहीं । यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं ।।
मोरि बात सब बिधिहिं बनाई । प्रजा पाँच कत करहु सहाई ।।

ग्रह - ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार ।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु कौन उपचार ।।५·१७।।

कैकइ सुअन जोगु जगु जोई । चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ।।
दसरथ-तनय राम लघु भाई । दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई ।।
तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका । राय रजायसु सब कहँ नीका ।।
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही । कहहु सुखेन जथारुचि जेही ।।
मोहि कुमातु समेत बिहाई । कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई ।।
मो बिनु को सचराचर माहीं । जेहि सियरामु प्रानप्रिय नाहीं ।।
परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू । अदिनु मोर नहिं दूषन काहू ।।
संसयसील प्रेमबस अहहू । सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू ।।

राम मातु सुठि सरल चित मो पर प्रेमु बिसेखि ।
कहइ सुभाय सनेहबस मोरि दीनता देखि ।।५·१८।।

गुर बिबेक-सागर जगु जाना । जिन्हहिं बिस्व करबदर समाना ।।
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ । भयें बिधि बिमुख सबु कोऊ ।।
परिहरि रामु सीय जग माहीं । कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ।।
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी । अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी ।।
डरु न मोहि जगु कहहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिन सोचू ।।
एकइ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगि भे सियराम दुखारी ।।
जीवन लाहु लखन भल पावा । सबु तजि रामचरन मनु लावा ।।
मोर जनम रघुबर बन लागी । झूठ काह पछिताउँ अभागी ।।



आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथपद जिअ कै जरनि न जाइ ॥५·१९॥

आन उपाउ मोहिं नहिं सूझा। को जिअ कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहिं कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी॥
सीलु सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवकु जद्यपि बामा॥
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहि सुनि बिनय मोहिं जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी॥

जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ॥५·२०॥

भरत बचन सब कहुँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥
मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेह बिकल भये भारी॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥
तात भरत अस काहे न कहहू। प्रानसमान राम-प्रिय अहहू॥
जो पाँवरु अपनी जड़ताई। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई॥
सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसहि कलप सत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥

अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोकसिंधु बूड़त सबहिं तुम अवलंबनु दीन्ह ॥५·२१॥

भा सब के मन मोदु न थोरा। जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥
मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेह सराहत जाहीं॥
कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलइ कर साजहिं साजू॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन लाहू॥

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ॥१८२॥

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदयँ परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवनु भँडारू ॥
संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई ॥
करइ स्वामिहित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई ॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहु निज धरम न डोले ॥
कहि सबु मरमु धरमु भल भाखा। जो जेहि लायक सो तेहि राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राममातु - पहिं भरतु सिधारे ॥

आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकी सजन सुखासन जान ॥१८३॥

चक्क चक्कि जिमि पुर नरनारी। चहत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सब निसि भएउ बिहाना। भरत बोलाये सचिव सुजाना ॥
कहेउ लेहु सबु तिलकसमाजू। बनहिं देब मुनि रामहिं राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥
अरुंधती अरु अगिनिसमाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना ॥
नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी ॥

सौंपि नगरु सुचि सेवकनि सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ ॥१८४॥

राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी ॥
बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं ॥
देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली ॥
तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी ॥
तुम्हरे चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोककृस नहिं मग जोगू ॥

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई । रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई ।।
तमसा प्रथम दिवस करि बासू । दूसरि गोमति तीर निवासू ।।

पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग ।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग ।।५.२५।।

सई तीर बसि चले बिहाने । सृंगबेरपुर सब निअराने ।।
समाचार सब सुने निषादा । हृदयँ बिचार करै सबिषादा ।।
कारन कवन भरतु बन जाहीं । है कछु कपटभाउ मन माहीं ।।
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई । तौ कत लीन्ह संग कटकाई ।।
जानहिं सानुज रामहि मारी । करौं अकंटक राजु सुखारी ।।
भरत न राजनीति उर आनी । तब कलंकु अब जीवन-हानी ।।
सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहि समर न जीतनिहारा ।।
का आचरजु भरतु अस करहीं । नहिं बिषबेलि अमिअ फल फरहीं।।

अस बिचारि गुह ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु ।
हथबाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु ।।५.२६।।

होहु सँजोइल रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरइ के ठाटा ।।
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ । जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ।।
समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा । राम-काजु छनभंगु सरीरा ।।
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू । बड़े भाग असि पाइअ मीचू ।।
स्वामिकाज करिहउँ रन रारी । जस धवलिहउँ भुवन दस चारी ।।
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे । दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे ।।
साधुसमाज न जाकर लेखा । रामभगत महुँ जासु न रेखा ।।
जाय जिअत जग सो महि भारू । जननी जोबन बिटप कुठारू ।।

बिगतबिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु ।
सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु ।।५.२७।।

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ । सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ।।
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा । एकहि एक बढ़ावहिं करषा ।।
चले निषाद जोहारि जोहारी । सूर सकल रन रूचइ रारी ।।
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं । भाथी बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं ।।

अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं । फरसा बाँस सेल सम करहीं ।।
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े । कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े ।।
निज निज साजु समाजु बनाई । गुह राउतहिं जोहारे जाई ।।
देखि सुभट सब लायक जाने । लइ लइ नाम सकल सनमाने ।।

भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि ।
सुनि सरोस बोले सुभट बीरु अधीरु न होहि ।।५·२८।।

रामप्रताप नाथ बल तोरें । करहिं कटक बिनु भट बिनु घोरें ।।
जीवत पाउ न पाछे धरहीं । रुंड-मुंडमय मेदिनि करहीं ।।
दीख निषादनाथ भल टोलू । कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ।।
एतना कहत छींक भइ बाएँ । कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ ।।
बूढ़ एक कह सगुन बिचारी । भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ।।
रामहि भरतु मनावन जाहीं । सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं ।।
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा । सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा ।।
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें । बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ।।

गहहु घाट भट सिमिटि सब लेउँ मरमु मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तब तस करिहौं आइ ।।५·२९।।

लखब सनेहु सुभाय सुहाएँ । बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ ।।
अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ।।
मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ।।
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए । मंगलमूल सगुन सुभ पाए ।।
देखि दूर तें कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहिं दंड-प्रनामू ।।
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ।।
रामसखा सुनि स्यंदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ।।
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ।।

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ ।।५·३०।।

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ।।
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला । सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला ।।

लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ।।
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पापपुंज समुहाहीं ।।
येहि तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा ।।
करमनासजलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ।।
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना ।।

स्वपच सबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात ।।५·३१।।

नहिं अचरजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई ।।
रामनाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुख लहहीं ।।
रामसखहिं मिलि भरतु सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल खेमा ।।
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ।।
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा ।।
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी ।।
कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ।।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।।

समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधिबंचित सोइ ।।५·३२।।

कपटी कायरु कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती ।।
राम कीन्ह आपन जबही तें। भएउँ भुवन-भूषन तबही तें ।।
देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई ।।
कहि निषाद निज नामु सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी ।।
जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ।।
निरखि निषादु नगर नर नारी। भये सुखी जनु लखनु निहारी ।।
कहहिं लहेउ एहिं जीवनलाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू ।।
सुनि निषाद निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लवाई ।।

सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनायेन्हि जाइ ।।५·३३।।

पतिदेवता सुतीयमनि सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेखि ।।५.३६।।

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ।।
पुरजनप्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रान-पिआरे ।।
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ ।।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती ।।
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर ।।
पुरजन परिजन गुर पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता ।।
बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ।।
सारद कोटि कोटि सत सेखा। करि न सकहिं प्रभु गुनगन लेखा ।।

सुख सरूप रघुबंस मनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधिगति अति बलवान ।।५.३७।।

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ ।।
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिनराती ।।
ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी ।।
धिग कैकई अमंगलमूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ।।
मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भएउ जेहि लागी ।।
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाता। साइँ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता ।।
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू ।।
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधिबामहि ।।

बिधिबाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्हीं बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी ।।
तुलसी न तुम्ह सो रामप्रीतमु कहतु हौं सौंहें कियें।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हियें ।।

अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिश्रामु एह बिचारि दृढ़ आनि मन ।।५.३८।।

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा ।।
एह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी ।।

जानहु राम कुटिल करि मोहीं । लोग कहहु गुर साहिब द्रोही ।।
सीतारामचरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ।।
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाँचत जलु पबि पाहन डारउ ।।
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई ।।
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ।।
भरत बचन सुनि माँझ त्रिबेनी । भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ।।
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम-चरन अनुराग अगाधू ।।
बादि गलानि करहु मन माहीं । तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं ।।

तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि बेनिबचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल ।।५·४२।।

प्रमुदित तीरथराज निवासी । बैखानस बटु गृही उदासी ।।
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा । भरतसनेहु सीलु सुठि साँचा ।।
सुनत राम गुन ग्राम सुहाए । भरद्वाज मुनिबर पहिं आए ।।
दंड प्रनामु करत मुनि देखे । मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ।।
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हें । दीन्ह असीस कृतारथ कीन्हें ।।
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे । चहत सकुचगृह जनु भजि पैठे ।।
मुनि पूछब किछु यह बड़ सोचू । बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू ।।
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई । बिधि करतब पर किछु न बसाई ।।

तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु, समुझि मातु करतूति ।
तात कइकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ।।५·४३।।

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ । लोकु बेदु बुध संमत दोऊ ।।
तात तुम्हार बिमल जसु गाई । पाइहि लोकउ बेद बड़ाई ।।
लोक बेद संमत सबु कहई । जेहि पितु देइ राजु सो लहई ।।
राउ सत्यब्रत तुम्हहि बोलाई । देत राजु सुखु धरमु बड़ाई ।।
राम-गवनु बन अनरथमूला । जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला ।।
सो भावीबस रानि अयानी । करि कुचालि अंतहु पछितानी ।।
तहउँ तुम्हार अलप अपराधू । कहइ सो अधमु अयान असाधू ।।
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोसू । रामहि होत सुनत संतोसू ।।

सृंगबेरपुर भरत दीख जब । भे सनेह बस अंग सिथिल तब ।।
सोहत दिए निषादहिं लागू । जनु तनु धरें बिनय अनुरागू ।।
एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा । दीख जाइ जगपावनि गंगा ।।
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ।।
करहिं प्रनाम नगर-नरनारी । मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ।।
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी । रामचंद्र पद प्रीति न थोरी ।।
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू । सकल सुखद सेवक सुरधेनू ।।
जोरि पानि बर माँगउँ एहू । सीय - राम - पद सहज सनेहू ।।

एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ ।
मातु नहानी जानि सब डेरा चले लवाइ ।।५·३४।।

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा । भरत सोधु सब ही कर लीन्हा ।।
सुर सेवा करि आयेसु पाई । राममातु पहिं गे दोउ भाई ।।
चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी । जननी सकल भरत सनमानी ।।
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई । आपु निषादहिं लीन्ह बोलाई ।।
चले सखा कर सों कर जोरे । सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे ।।
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ।।
जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए । कहत भरे जल लोचन कोए ।।
भरत बचन सुनि भयेउ बिषादू । तुरत तहाँ लइ गयेउ निषादू ।।

जहँ सिंसुपा पुनीत तरु रघुबर किय बिश्रामु ।
अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु ।।५·३५।।

कुस साँथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन लाई ।।
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ।।
कनकबिंदु दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीय सम लेखे ।।
सजल बिलोचन हृदय गलानी । कहत सखा सन बचन सुबानी ।।
स्रीहत सीय बिरह दुतिहीना । जथा अवध नर-नारि बिलीना ।।
पिता जनक देउँ पटतर केही । करतल भोगु जोगु जग जेही ।।
ससुर भानुकूल-भानु भुआलू । जेहि सिहात अमरावतिपालू ।।
प्राननाथ रघुनाथ गोसाईं । जो बड़ होत सो राम बड़ाई ।।

पतिदेवता सुतीयमनि सीय साँथरी देखि ।
बिहरत हृदय न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेखि ।।५ ३६।।

लालन जोगु लखन लघु लोने । भे न भाइ अस अहहिं न होने ।।
पुरजनप्रिय पितु मातु दुलारे । सिय रघुबीरहि प्रान-पिआरे ।।
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । तात बाउ तन लाग न काऊ ।।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती । निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती ।।
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर । रूप सील सुख सब गुन सागर ।।
पुरजन परिजन गुर पितु माता । राम सुभाउ सबहि सुखदाता ।।
बैरिउ राम बड़ाई करहीं । बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ।।
सारद कोटि कोटि सत सेखा । करि न सकहिं प्रभु गुनगन लेखा ।।

सुख सरूप रघुबंस मनि मंगल मोद निधान ।
ते सोवत कुस डासि महि बिधिगति अति बलवान ।।५.३७।।

राम सुना दुखु कान न काऊ । जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ ।।
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती । जोगवहिं जननि सकल दिनराती ।।
ते अब फिरत बिपिन पदचारी । कंद मूल फल फूल अहारी ।।
धिग कैकई अमंगलमूला । भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ।।
मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी । सबु उतपातु भएउ जेहि लागी ।।
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाता । साइँ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता ।।
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू । नाथ करिअ कत बादि बिषादू ।।
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि । यह निरजोसु दोसु बिधिबामहि ।।

बिधिबाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्हीं बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी ।।
तुलसी न तुम्ह सो रामप्रीतमु कहतु हौं सौंहें किये ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हियें ।।

अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिअ करिअ बिस्रामु एह बिचारि दृढ़ आनि मन ।।५.३८।।

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा । बास चले सुमिरत रघुबीरा ।।
एह सुधि पाइ नगर नर नारी । चले बिलोकन आरत भारी ।।

परदखिना करि करहिं प्रनामा । देहिं कैकइहि खोरि निकामा ।।
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं । बाम बिधातहिं दूषन देहीं ।।
एक सराहहिं भरतसनेहू । कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ।।
निंदहिं आपु सराहि निषादहिं । को कहि सकइ बिमोह बिषादहिं ।।
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा । भा भिनुसारु गुदारा लागा ।।
गुरहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाईं । नईं नाव सब मातु चढ़ाईं ।।
दंड चारि महँ भा सबु पारा । उतरि भरत तब सबहिं सँभारा ।।

प्रातक्रिया करि मातु पद बंदि गुरहिं सिरु नाइ ।
आगें किये निषादगन दीन्हेउ कटकु चलाइ ।।५·३९।।

कियेउ निषादनाथु अगुआईं । मातु पालकी सकल चलाईं ।।
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा । बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा ।।
आपु सुरसरिहिं कीन्ह प्रनामू । सुमिरे लखन सहित सियरामू ।।
गवने भरत पयादेहिं पाएँ । कोतल संग जाहिं डोरिआएँ ।।
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा । होइअ नाथ अस्व असवारा ।।
रामु पयादेहि पायँ सिधाए । हम कहँ रथ गज बाजि बनाए ।।
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तें सेवक धरमु कठोरा ।।
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी । सब सेवकगन गरहिं गलानी ।।

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग ।
कहत रामसिय रामसिय उमगि उमगि अनुराग ।।५·४०।।

झलका झलकत पायन्ह कैसें । पंकज कोस ओसकन जैसें ।।
भरत पयादेहिं आए आजू । भएउ दुखित सुनि सकल समाजू ।।
खबरि लीन्ह सब लोग नहाए । कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए ।।
सबिधि सितासित नीर नहाने । दिये दान महिसुर सनमाने ।।
देखत स्यामल धवल हिलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ।।
सकल कामप्रद तीरथराऊ । बेदबिदित जग प्रकट प्रभाऊ ।।
माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ।।
अस जिय जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक बानी ।।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन ।।५·४१।।

जानहु राम कुटिल करि मोहीं। लोग कहहु गुर साहिब द्रोही।।
सीतारामचरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें।।
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाँचत जलु पबि पाहन डारउ।।
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई।।
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें।।
भरत बचन सुनि माँझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी।।
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम-चरन अनुराग अगाधू।।
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं।।

तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि बेनिबचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल।।५·४२।।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी।।
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरतसनेहु सीलु सुठि साँचा।।
सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए।।
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे।।
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हें। दीन्ह असीस कृतारथ कीन्हें।।
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुचगृह जनु भजि पैठे।।
मुनि पूछब किछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू।।
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई।।

तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कइकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति।।५·४३।।

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ।।
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेद बड़ाई।।
लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई।।
राउ सत्यब्रत तुम्हहिं बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई।।
राम-गवनु बन अनरथमूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला।।
सो भावीबस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहु पछतानी।।
तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधमु अयान असाधू।।
करतेहु राजु त तुम्हहिं न दोसू। रामहि होत सुनत संतोसू।।

अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहिं उचित मत एहु ।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु ।।५·४४।।
सो तुम्हार धनु जीवन प्राना । भूरि भाग को तुम्हहिं समाना ।।
यह तुम्हार आचरजु न ताता । दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ।।
सुनहु भरत रघुपति मन माहीं । पेमपात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ।।
लखन राम सीतहिं अति प्रीति । निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ।।
जाना मरम नहात प्रयागा । मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा ।।
तुम्ह पर अस सनेह रघुबर कें । सुख जीवन जग जस जड़ नर कें ।।
यह न अधिक रघुबीर बड़ाई । प्रनत कुटुंबपाल रघुराई ।।
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु रामसनेहू ।।
तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेस ।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेस ।।५·४५।।
नव बिधु बिमल तात जस तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।।
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ।।
कोक तिलोक प्रीति अति करिही । प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरिही ।।
निसि दिन सुखद सदा सब काहू । ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू ।।
पूरन राम सुपेम पियूषा । गुरु अवमान दोख नहिं दूषा ।।
राम भगत अब अमिअ अघाहू । कीन्हिहु सुलभ सुधा बसुधाहू ।।
भूप भगीरथ सुरसरि आनी । सुमिरत सकल सुमंगल खानी ।।
दसरथ गुनगन बरनि न जाहीं । अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं ।।
जासु सनेह सँकोच बस रामु प्रकट भये आइ ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ ।।५·४६ ।।
कीरतिबिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा । जहँ बस राम पेम मृग रूपा ।।
तात गलानि करहु जिय जाएँ । डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ ।।
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ।।
सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसनु पावा ।।
तेहि फल कर फलु दरसु तुम्हारा । सहित पयाग सुभाग हमारा ।।
भरत धन्य तुम्ह जसु जग जयेऊ । कहि अस पेममगन मुनि भयेऊ ।।
सुनि मुनिबचन सभासद हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ।।
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा । सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा ।।

पुलक गात हियँ राम सिय सजल सरोरुह नयन ।
करि प्रनामु मुनि-मंडलिहि बोले गदगद बयन ॥५४०॥
मुनि समाजु अरु तीरथराजू । साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू ॥
एहि थल जौं किछु कहिय बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई ॥
तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ । उर अंतरजामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहिं दुख जियँ जगु जानहि पोचू ॥
नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू । पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए । लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥
रामबिरह तजि तनु छनभंगू । भूप सोच कर कवन प्रसंगू ॥
राम लखन सिय बिनु पगपनहीं । करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ॥
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात ।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ॥५४८॥
एहि दुख दाह दहइ दिन छाती । भूख न बासर नींद न राती ॥
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं । सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं ॥
मातु कुमत बढ़ई अघमूला । तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला ॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू । गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥
मोहि लगि यहु कुठाटु तेहि ठाटा । घालेसि सब जगु बारह बाटा ॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ । बसइ अवध नहिं आन उपाएँ ॥
भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई । सबहिं कीन्ह बहु भाँति बड़ाई ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेखी । सब दुख मिटिहि रामपग देखी ॥
करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥५४९॥
सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू । भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुरगिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयेसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यह नाथ हमारा ॥
भरत बचन मुनिबर मन भाए । सुचि सेवक सिख निकट बुलाए ॥
चाहिय कीन्हि भरत पहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए । प्रमुदित निज निज काज सिधाए ।
मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चाहिअ जस देवता ।
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई । आयेसु होइ सो करहिं गोसाई ॥

राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रमु कहा मुदित मुनिराज ॥५·५०॥

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी । बड़भागिनि आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधिसमुदाई । अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥
मुनिपद बिंद करिअ सोइ आजू । होहि सुखी सब राजसमाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना । जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥
भोग बिभूति भूरि भरि राखे । देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे ॥
दासी दास साजु सब लीन्हें । जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हे ॥
सबु समाज सजि सिधि पल माहीं । जे सुख सपनेहुँ सुरपुर नाहीं ॥
प्रथमहिं बास दिये सब केही । सुंदर सुखद जथारुचि जेही ॥

बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि जस आयसु दीन्ह ।
बिधिबिसमयदायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह ॥५·५१॥

मुनिप्रभाउ जब भरत बिलोका । सब लघु लगे लोकपतिलोका ॥
सुखसमाजु नहिं जाइ बखानी । देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥
आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना । बिमल जलासय बिबिध बिधाना ॥
असन पान सुचि अमिअ अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुरसुरभी सुरतरु सबही के । लखि अभिलाष सुरेस सची के ॥
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा । देखि हरष-बिसमय बस लोगा ॥

संपति चकई भरतु चक मुनि आयेसु खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पींजरा राखे भा भिनुसार ॥५·५२॥

गीतावली

पालने रघुपतिहिँ झुलावैं ।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावैं ।।
केकिकंठ दुति स्यामबरन बपु, बालबिभूषन बिरचि बनाए ।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू नील नलिन दोउ नयन सुहाए ।।
सिसु-सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए ।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए ।।
उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत ।
मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधुभय बिनय करत अति आरत ।।
तुलसीदास बहु बास बिबस अलि गुंजत सुछबि न जाति बखानी ।
मनहुँ सकल स्रुतिरिचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी ।।५·५३।।

सब दिन चित्रकूट नीको लागत ।
बरषारितु प्रबेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत ।।
चहुँदिसि बन संपन्न बिहँग-मृग बोलत सोभा पावत ।
जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ।।
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि ।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि ।।
सिखर परस घन-घटहि मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी ।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ।।
जलजुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन-प्रतिबिंब तरंग ।
मानहुँ जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग-अंग ।।
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे ।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानौ राम-भगति के पाछे ।।५·५४।।

राघौ ! एक बार फिरि आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरौ बनहिं सिधावौ ।।
जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, बार बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे ।।
भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे, मनहुँ कमल हिम-मारे ।।

सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन, कहियो मात-सँदेसो।
तुलसी मोहिं और सबहिन तें इन्हको बड़ो अँदेसो ।।५·५५।।

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि ! जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न ।।
लोचन नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचन-कोन।
'हा धुनि' खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ।।
जेहि बाटिका बसति, तहँ खग-मृग तजि-तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास समीर भेंट भइ भोरेहु, तेहिं मग पगु न धरयो तिहुँ पौन ।।
तुलसीदास प्रभु ! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस, दूरि कीजै दुख, हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन ।।५·५६।।

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहिं निचोरि चैल-ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं ।।
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ।।
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु-अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यौं, सबहि को पापु बहावौं ।।
तुम्हरिहिं कृपा, प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी-प्रभु, जेहिं तुम्हरे मन भावौं ।।५·५७।।

कवितावली

अवधेस के द्वारे सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोचबिमोचन को ठगि-सी रही जे न ठगे धिक से ।।
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक-से।
सजनी ससि में समसील उभै, नवनील-सरोरुह-से बिकसे ।।५·५८।।

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं ।।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यौं किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरैं ।।५·५९।।

दूलह श्रीरघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेदजुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।
राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।५·६०।।

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाला-माल मानौं,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि-सी उघारी है।
तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी-कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजारयौ अब नगर प्रजारी है" ।।५·६१।।

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट-उर,
दिन दिन बिकल सकल-सुख-राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो।
राम की रजाय तें रसायनी समीर-सूनु,
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ।।५·६२।।

ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी-सी,
तीर तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै।
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै ।।५·६३।।

रसनिधि

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोचबस,
कहैं एक एकन सों, "कहाँ जाई, का करी?"।

बेदहू पुरान कही, लोकहू, बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद - दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ॥५ ६४॥

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥५·६५॥

विनय-पत्रिका

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्यायबी कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासीदास कहाइ॥
बूझिहैं सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
हौं हारचौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसय प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं, जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥५·६६॥

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसकन की॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की॥
ज्यों गच काँच बिलाकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहारबस छति बिसारि आनन की॥

कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन की ।।५·६७।।
हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधनधाम बिबुध-दुर्लभ तनु मोहिं कृपा करि दीन्हों ।।
कोटिहुँ मुख कहि जायँ न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजै परम उदार ।।
बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातें सहिय बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ।।
कृपा-डोरि बंसी पद-अंकुस परम प्रेम मृदु-चारो।
यहि बिधि बेगि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो ।।
हैं स्रुति बिदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ।।५·६८।।
केसव कहि न जाइ कहिए ?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ।।
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिँ तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न, मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे ।।
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ।।५·६९।।
ऐसो को उदार जग माहीं ?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ।।
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ।।
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच हरि दीन्हीं ।।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ।।५·७०।।

: ६ :

केशव

गणेश-वंदना

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
बिपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरिकै कलंक अंक भवसीस ससि सम,
राखत हैं केसौदास दास के बपुख को।
साँकरे की सांकरन सनमुख होत तोरै,
दसमुख मुख जोवै गजमुख मुख को ॥६·१॥

वाणीवंदना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तपबृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई।
भावी, भूत, बर्तमान जगत बखानत है,
केसौदास केहूँ न बखानी काहू पै गई।
बर्नै पति चारि मुख, पूत बर्नै पाँच मुख,
नाती बर्नै षट मुख, तदपि नई नई ॥६·२॥

रामचन्द्रिका—सुन्दर-कांड

हनुमान् लंका-गमन

[दो०] उदधि नाकपतिसत्रु को, उदित जानि बलवंत ।
अंतरिच्छ ही लच्छि पद, अच्छ छुयो हनुमंत ।।६.३।।
बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि ।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि । ६.४।।

[तारक छंद]

कछु राति गये करि दंस दसा सी ।
पुर माँझ चले बनराजि बिलासी ।
जबहीं हनुमंत चले तजि शंका ।
मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका ।।६.५।।

हनुमान्-लंका-संवाद

लंका—कहि मोहिं उलंघ चले तुम को हौ ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहौ !
पठये केहि कारन कौन चले हौ ?
सुर हौ किधौं कोऊ सुरेस भले हौ ।।६.६।।

हनुमान—हम बानर हैं रघुनाथ पठाये ।
तिनकी तरुनी अवलोकन आये ।

लंका—हति मोहिं महामति भीतर जैए ।

हनुमान—तरुनीहि हते कब लौं सुख पैये ।।६.७।।

लंका—तुम मारेहिं पै पुर पैठन पैहौ ।
हठ कोटि करौ घर ही फिरि जैहौ ।
हनुमंत बली तेहि थापर मारी ।
तजि देह भई तब ही बर नारी ।।६.८।।

लंका—[चौ०] धनदपुरी हौं रावन लीन्हीं ।
बहु बिधि पापन के रस भीनी ।

: ६ :

केशव

गणेश-वंदना

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
बिपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरिकै कलंक अंक भवसीस ससि सम,
राखत हैं केसौदास दास के बपुख को।
साँकरे की साँकरन सनमुख होत तोरै,
दसमुख मुख जोवै गजमुख मुख को ।।६·१।।

वाणीवंदना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तपबृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई।
भावी, भूत, बर्तमान जगत बखानत है,
केसौदास केहूँ न बखानी काहू पै गई।
बर्नै पति चारि मुख, पूत बर्नै पाँच मुख,
नाती बर्नै षट मुख, तदपि नई नई ।।६·२।।

रामचन्द्रिका—सुन्दर-कांड

हनुमान् लंका-गमन

[दो०] उदधि नाकपतिसत्रु को, उदित जानि बलवंत ।
अंतरिच्छ ही लच्छि पद, अच्छ छुयो हनुमंत ॥६.३॥
बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि ।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि । ६.४॥

[तारक छंद]

कछु राति गये करि दंस दसा सी ।
पुर माँझ चले बनराजि बिलासी ।
जबहीं हनुमंत चले तजि शंका ।
मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका ॥६.५॥

हनुमान्-लंका-संवाद

लंका—कहि मोहिं उलंघ चले तुम को हौ ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहौ !
पठये केहि कारन कौन चले हौ ?
सुर हौ किधौं कोऊ सुरेस भले हौ ॥६.६॥
हनुमान—हम बानर हैं रघुनाथ पठाये ।
तिनकी तरुनी अवलोकन आये ।
लंका—हति मोंहि महामति भीतर जैए ।
हनुमान—तरुनीहि हते कब लौं सुख पैये ॥६.७॥
लंका—तुम मारेहिं पै पुर पैठन पैहौ ।
हठ कोटि करौ घर ही फिरि जैहौ ।
हनुमंत बली तेहि थापर मारी ।
तजि देह भई तब ही बर नारी ॥६.८॥
लंका—[चौ०] धनदपुरी हौं रावन लीन्हीं ।
बहु बिधि पापन के रस भीनी ।

चतुरानन चित चिंतन कीन्हो।
वरु करुना करि मो कहँ दीन्हो ॥६.९॥

जब दसकंठ सिया हरि लैहै।
हरि हनुमंत बिलोकन ऐहैं।
जब वह तोहिँ हतै तजि संका।
तब प्रभु होइ बिभीषन लंका ॥६.१०॥

चलन लगो जबही तब कीजौ।
मृतक सरीरहि पावक दीजौ।
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमंत निहारी ॥६.११॥

रावण-शयनागार

तब हरि रावन सोवत देख्यो।
मणिमय पलका की छबि लेख्यो।
तहँ तरुनी बहु भाँतिन गावैं।
बिच बिच आवझ बीन बजावैं ॥६.१२॥

मृतक चिता पर मानहु सोहैं।
चहुँ दिसि प्रेतबधू मन मोहैं।
जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय बिन है सिगरो घर सूनो ॥६.१३॥

[भुजंगप्रयात छन्द]

कहूँ किन्नरो किन्नरी लै बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं।
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावैं।
नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं ॥६.१४॥
पियै एक हाला गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रशाला।
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावै सुआ लै सुकी सारिका को ॥६.१५॥

फिरयो देखिकै राजसाला सभा कों।
रह्यो रीझि कै बाटिका की प्रभा कों।
फिरयो ओर चौहूँ चितै सुद्ध गीता।
विलोकी भली सिसिपा मूल सीता ॥६.१६॥

सीता-दर्शन

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सों काढ़ि डारी।
सदा रामनामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुःख-दानी ॥६.१७॥

ग्रसी बुद्धि सी चित्त चिंतानि मानों।
किधौं जीभ दंतावली मैं बखानों।
किधौं घेरिकै राहुनारीन लीनी।
कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनो ॥६.१८॥

किधौं जीव की ज्योति माया मलीनी।
अबिद्यान के मध्य बिद्या प्रबीनी।
मनो संत्ररस्त्रीन मैं कामबामा।
हनूमान ऐसी लखी राम-रामा ॥६.१९॥

तहाँ देवद्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो।
सबै अंग लै अंगही मैं दुरायो।
अधोदृष्टि कै अस्रुधारा बहायो ॥६.२०॥

रावण-सीता-संवाद

रावण—सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै।
इती सोच तौ राम काजे न कीजै।
बसै दंडकारण्य देखै न कोऊ।
जो देखै महा बावरो होय सोऊ ॥६.२१॥

कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै।
हितू नग्न मुंडोन ही को सदा है।

अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी।
बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी ॥६.२२॥
तुम्हैं देवि दूषै हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै।
महानिर्गुनी नाम ताको न लीजै
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै ॥६.२३॥
अदेवी नृदेवीन की होहु रानी।
करैं सेव बानी मघोनी मृडानी।
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेसी नचैं उर्बसी मान पावैं ॥६.२४॥

मालिनीछंद

सीता—तृण बिच दइ बोली सीय गंभीर बानी।
दसमुख सठ को तू? कौन की राजधानी?
दसरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यौं न स्यौं मूल नासै ॥६.२५॥
अति तनु धनुरेखा नेक नाँघी न जाकी।
खल खर सर धारा क्यौं सहै तिच्छ ताकी।
बिड़ कन धन घूरे मच्छि क्यों बाज जीवै?
सिव सिर ससि श्री कों राहु कैसे सो छीवै ॥६.२६॥
उठि उठि सठ ह्याँ तें भागु तौ लौं अभागे।
मम बचन बिसर्पी सर्प जौ लौं न लागे।
बिकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरौ।
निहत मृतक तोकों रोष मारै न मेरौ ॥६.२७॥
[दो०] अवधि दई द्वै मास की कह्यो राच्छसिन बोलि।
ज्यौं समुझै समुझाइयौ, जुक्ति-छुरी सौं छोलि ॥६.२८॥

मुद्रिका-प्रदान

[चामर छंद]

देखि देखि कै असोक राजपुत्रिका कह्यौ।
देहि मोहिं आगि तैं जो अंग आगि ह्वै रह्यौ॥

ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई ।।६.२९।।

[तोमर छंद]

जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ ।।
यह कह्यो लखि तब ताहि। मनि-जटित मुंदरी आहि ।।६.३०।।

जब बाँचि देख्यौ नाँउ। मन परचो संभ्रम भाउ ।।
आबाल ते रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ ।।६.३१।।

बिछुरी सो कौन उपाउ। केहि आनियो यह ठाउँ ।।
सुधि लहौं कौन उपाय। अब काहि बूझन जाउँ ।।६.३२।।

चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियौ आकास ।।
तँह साख बैठो नीठि। तब परयौ बानर डीठि ।।६.३३।।

सीता-हनुमान-संवाद

तब कह्यौ, "को तू आहि। सुर असुर मो तन चाहि ।।
कै जच्छ, पच्छ बिरूप। दसकंठ बानर रूप ।।६.३४।।

कहि आपनौं तू भेद। न तु चित्त उपजत खेद ।।
कहि बेगि बानर, पाप। न तु तोहिँ देहौं शाप ।।"
डरि बृच्छ साखा भूमि। कपि उतरि आयो भूमि ।।६.३५।।

पद्धटिका छंद

कर जोरि कह्यौ, 'हौं पवनपूत।
जिय जननि जानु रघुनाथदूत' ।।
"रघुनाथ कौन ? 'दसरत्थ-नंद'।
'दसरत्थ कौन ?' 'अजतनय चंद' ।।६.३६।।

'केहि कारण पठये यहि निकेत ?'
'निज देन लेन संदेश हेत ।।'
'गुन रूप सील सोभा सुभाउ।
कछु रघुपति के लच्छन बताउ' ।।६.३७।।

अति यदपि सुमित्रानंद भक्त।
अति सेवक हैं अति सूर सक्त।।
अरु जदपि अनुज तीन्यौ समान।
पै तदपि भरत भावत निदान।।६.३८।।

ज्यौं नारायण उर श्री बसंति।
त्यौं रघुपति उर कछु द्युति लसंति।
जग जितने हैं सब भूमि भूप।
सुर असुर न पूजैं राम रूप।।६.३९।।

[निशिपालिका छंद]

सीता—मोहिं परतीति यहि भाँति नहिं आवई।
प्रीति कहि धौं सु नर बानरनि क्यों भई।।
बात सब बर्णि परतीति हरि त्यौं दई।
आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई।।६.४०।।

[दोहा] आँसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहिं, बरनति है बहु भाइ।।६.४१।।

मुद्रिका वर्णन

[पद्धटिका छंद]

यह सूरकिरण तम दुःखदारि।
ससिकला किधौं उर सीतकारि।।
कल कीरति सी सुभ सहित नाम।
कै राज्यश्री यह तजी राम।।६.४२।।

कै नारायन उर सम लसंति।
सुभ अंकन ऊपर श्री बसंति।।
बर बिद्या सी आनंददानि।
युत अष्टापद मनु सिवा मानि।।६.४३।।

जनु माया अच्छर सहित देखि।
कै पत्री निश्चयदानि लेखि।।

प्रिय प्रतीहारनी सी निहारि।
श्री रामोजय उच्चारकारि ।।६·४४।।

पिय पठई मानौ सखि सुजान।
जगभूषण कौ भूषण निधान।
निजु आई हमकौं सीख देन।
यह किधौं हमारो मरम लेन ।।६·४५।।

[दो०] सुखदा सिखदा अर्थदा, जसदा रसदातारि।
रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि ।।६·४६।।

बहुवरना सहज प्रिया, तम-गुनहरा प्रमान।
जग मारग दरसावनी, सूरज किरन समान ।।६·४७।।

श्री पुर मैं, बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करिहै परतीति ।।६·४८।।

[पद्धटिका छंद]

कहि कुसल मुद्रिके! रामगात।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात ।।
यह उत्तर देति न बुद्धिवंत।
केहि कारण धौं हनुमंत संत ।।६·४९।।

हनुमान-[दो०] तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम ।।
ककन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम ।।६·५०।।

राम-विरह-वर्णन

[दंडक]

दीरघ दरीन बसैं केसोदास केसरी ज्यौं,
केसरी कौं देखि बन करी ज्यों कँपत है।
बासर की संपति उलूक ज्यौं न चितवत,
चकवा ज्यौं चंद चितै चौगुनो चँपत है।
केका सुनि ब्याल ज्यौं, बिलात जात घनस्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यौं तपत है।

भौंर ज्यों भँवत बन, जोगी ज्यों जगत रैनि,
साकत ज्यौं राम नाम तेरोई जपत है ।।६·५१।।

[दो०] दुख देखे सुख होहिगो सुक्ख न दुःखविहीन ।
जैसे तपसी तप तपे होत परमपद लीन ।।६·५२।।

बरसा बैभव देखिकै देखी सरद सकाम ।
जैसे रन मैं काल भट भेंटि भेंटियत बाम ।।६·५३।।

दुःख देखिकै देखिहौं तव मुख आनँद-कंद ।
तपन ताप तपि द्यौस निसि जैसे सीतल चंद ।।६·५४।।

अपनी दसा कहा कहौं दीप दसा सी देह ।
जरत जाति बासर-निसा केसव सहित सनेह ।।६·५५।।

सुगति सुकेसि सुनैनि सुनि सुमुखि सुदंति सुस्रोनि ।
दरसावैगो बेगि ही तुमको सरसिज-योनि ।।६·५६।।

[हरिगीत छंद]

कछु जननि दे परतीति जासों रामचंद्रहिँ आवई ।
सुभ सीस की मनि दई, यह कहि, सुजस तव जग गावई ।।
सब काल ह्वै हौ अमर अरु तुम समर जसपद पाइहौ ।
सुत आजु तें रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ।।६·५७।।

कर जोरि पग परि तोरि उपबन कोरि किंकर मारियो ।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँहारियो ।।
रन मारि अच्छकुमार बहु बिधि इंद्रजित सों युद्ध कै ।
अति ब्रह्मसस्त्र प्रमान मानि सो बस्य भो मन सुद्ध कै ।।६·५८।।

हनुमान्-रावण-संवाद

[विजय छंद]

'रे कपि कौन तू अच्छ को घातक ?' 'दूत बली रघुनंदन जू को ।'
'को रघुनंदन रे ?' 'त्रिसिरा खरदूषन-दूषन भूषन भू को ।।'
'सागर कैसे तरयो ?' जैसे गोपद' 'काज कहा ?' सिय चोरहि देखौं ।'
'कैसे बँधायो ?' 'जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत, पातक लेखौं ।।६·५९।।

[चामर छंद]

रावण—कोरि कोरि यातनानि फोरि फारि मारिए।
काटि काटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिए॥
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे।
पौरि टाँगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहु रे॥६·६०॥

विभीषण—दूत मारिए न राजराज, छोड़ि दीजई।
मंत्रि मित्र पूछि कै सो और दंड कीजई॥
एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई।
बुंद सोखि गो कहा महा समुद्र छीजई॥६·६१॥

तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससी।
लै अपार रार ऊन दून सूत सौं कसी॥
पूँछि पौनपूत की सँवारि बारि दी जहीं।
अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं॥६·६२॥

[चंचरी छंद]

धाम धामनि आगि की बहु ज्वाल-माल बिराजहीं।
पौन के झकझोर तें झँझरी झरोखन भ्राजहीं॥
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
छुद्र ज्यों बिपदाहि आवत छाँड़ि जात न लाजहीं॥६·६३॥

[भुजंगप्रयात छंद]

जटी अग्निज्वाला अटा सेत है यौं।
सरत्काल के मेघ संध्या समै ज्यौं॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजै।
मनौ स्वर्ण की किंकिणी नाग साजै॥६·६४॥

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े।
मनौ ईस रोषाग्नि में काम डाढ़े॥
कहूँ कामिनी ज्वालामालानि मोरैं।
तजें लाल सारी अलंकार तोरैं॥६·६५॥

कहूँ भौन राते रचे धूम-छाहीं।
ससी सूर मानौं लसैं मेघ माहीं॥
जरैं सस्त्रसाला मिली गंधमाला।
मलै अद्रि मानो लगी दाव ज्वाला॥६६६॥

चलीं भागि चौहूँ दिसा राजरानी।
मिली ज्वाल-माला फिरैं दुःखदानी।
मनो ईस बानावली लाल लोलैं।
सबै दैत्य जायान के संग डोलैं॥६६७॥

[सवैया]

लंक लगाइ दई हनुमंत बिमान बचे अति उच्चरुखी ह्वै।
पावक मैं उचटैं बहुधा मनि, रानी रटैं 'पानी' 'पानी' दुखी ह्वै।
कंचन को पिघल्यो पुर पूर, पयोनिधि मैं पसरो सो सुखी ह्वै।
गंग हजारमुखी गुनि, केसौ, गिरा मिली मानौ अपार मुखी ह्वै॥६६८॥

[दो०] हनुमत लाई लंक सब, बच्यो बिभीषन धाम।
ज्यौं अरुनोदय बेर मैं, पंकज पूरब याम॥६६९॥

[संयुक्ता छंद]

हनुमंत लंक लगाइ कै। पुनि पूँछ सिंधु बुझाइ कै।
सुभ देख सीतहिं पाँ परे। मनि पाय आनँद जी भरे॥६७०॥
रघुनाथ पैं जब ही गये। उठि अंक लावन को भये।
प्रभु मैं कहा करनी करी। सिर पाय की धरनी धरी॥६७१॥

[दो०] चिंतामनि सी मनि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीताजू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनंत॥६७२॥

सीता-संदेश

[घनाक्षरी]

भौंरनी ज्यौं भ्रमति रहति बनबीथिकानि,
हंसिनी ज्यौं मृदुल मृनालिका चहति है।

हरिनी ज्यौं हेरति न केसरी के काननहिँ,
केका सुनि ब्याली ज्यौं बिलान ही चहति है।
'पीउ' 'पीउ' रटत रहति चित चातकी ज्यौं,
चद चितै चकई ज्यौं चुप ह्वै रहति है।
सुनहु नृपति राम बिरह तिहारे ऐसी,
सूरति न सीताजू की मूरति गहति है ॥६·७३॥

[दो०] 'श्रीनृसिंह प्रह्लाद की, बेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आसु ही झूँठी ह्वैहै नाथ' ॥६·७४॥

[दंडक]

राम—साँचे एक नाम हरि लीन्हें सब दुख हरि,
और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ।
बानर नहीं हो तुम मेरे बान रोष सम,
बलीमुख सूर बली मुख निजु गाये हौ।
साखामृग नाहीं, बुद्धि-बलन के साखा मृग,
कैधौं बेद साखामृग, केसव को माये हौ।
साधु हनुमंत बलवंत, जसवंत तुम,
गये एक काज कोँ अनेक करि आये हौ ॥६·७५॥

[तोमर छद]

हनुमान्—गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहिँ ल्याई बार।
कह करचो मैं बल रक। अति मृतक जारी लक ॥६·७६॥

राम पयान

तिथि बिजयदसमी पाइ। उठि चले श्रीरघुराइ ॥
हरि यूथ यूथप संग। बिन पच्छ के ते पतग ॥६·७७॥

[दंडक]

सुग्रीव—कहै केसौदास, तुम सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरी जबहिँ सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसिहिँ आसपास,
दिसि दिसि बरषा ज्यौं बलनि बलति है।

पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गन,
गजराज मृगराज राजनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आइ जात,
पुरइनि के से पात पुहुमी हलति है ॥६७८॥
लक्ष्मण-भार के उतारिबे को अवतरे रामचद्र,
किधौं केसौदास भूरि भरन प्रबल दल।
टूटत हैं तरुवर गिरे गन गिरिबर,
सूखे सब सरबर सरिता सकल जल।
उचकि चलत हरि दलकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।
लचकि लचकि जात सेस के असेस फन,
भागि गई भोगवता, अतल, बितल, तल ॥६७९॥
[दोहा] बल सागर लछिमन सहित, कपि सागर रनधीर।
जस-सागर रघुनाथ जू, मेले सागर तीर ॥६८०॥

समुद्र-वर्णन

[विजय छंद]

भूति बिभूति पियूषहु की बिष, ईस सरीर कि पाय बियो है।
है किधौं केसव कस्यप को घर, देव अदेवन के मन मोहै।
संत हियो कि बसैं हरि संतत, सोभ अनंत कहै, कबि को है।
चंदन नीर तरंग तरंगित, नागर कोउ कि सागर सोहै ॥६८१॥

[गीतिका छंद]

जलजाल काल कराल माल तिमिंगिलादिक सों बसै।
उर लोम छोम बिमोह कोह सकाम ज्यौं खल कों लसै।
बहु संपदाजुत जानिए अति पातकी सम लेखिए।
कोउ माँगनों अरु पाहुनो नहिं नीर पीवत देखिए ॥६८२॥

: ७ :

मतिराम

राधा मोहनलाल को जाहि न भावत नेह ।
परियौ मुठी हजार दस ताकी आँखिनि खेह ।।७·१।।

नागरि नैन कमान सर करत न ऐसी पीर ।
जैसें करत गँवारि के दृग धनुहीं के तीर ।।७·२।।

नवल नेह में दुहुनि को लखी अपूरब बात ।
ज्यों सूखति सब देह है त्यों पानिप अधिकात ।।७·३।।

तेरी मुख समता करी साहस करि निरसंक ।
धूरि परी अरबिंद मुख चदहिं लग्यो कलंक ।।७·४।।

खेलत मार सिकार है डोरे पास समेत ।
नैन मृगन सों बाँधिकै नैन मृगन गहि लेत ।।७·५।।

गुन औगुन को तनकऊ प्रभु नहिं करत बिचार ।
केतक कुसुमन आदरत हर सिर धरत कपार ।।७·६।।

जो तैं पहिरे सुंदरी सो दुति अधिक उदोतु ।
तेरे सुबरन रूप तें रूपौ सुबरन होतु ।।७·७।।

लाल तिहारे संग में खेलै खेऊ बलाइ ।
मूँदत मेरे नैन हो करनि कपूर लगाइ ।।७·८।।

कहा दवागिनि के पियें कहाँ धरें गिरि धीर ।
बिरहानल में बरत जो बूड़त लोचन नीर ।।७·९।।

दुरजन वे निंदत रहैं गुरुजन गारी देत ।
सहियत बोल कुबोल ये लाल तिहारे हेत ।।७·१०।।

होत दसगुनो अंकु है दियें एक ज्यों बिंदु ।
दियें दिठोना यों बढ़ी आनन आभा इंदु ।।७·११।।

छुवत परस्पर हेर कैं राधा नंदकिसोर ।
सबमें वेई होत हैं चोरमिहचनो चोर ।।७·१२।।

लसत बूँद अँसुवानि के बरुनिनि छोर उदार ।
दृग तुरंग भूलनि मनो झलकत मुकुत सुढार ।।७·१३।।

सेत बसन की चाँदनी परत गुलाल सुरंग ।
मानो सुरसरिता मिलति सरसुति तरल तरंग ।।७·१४।।

कुंदन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारु गुराई ।
आँखिन में अलसानि चितौन मैं मंजु बिलासन की सरसाई ।
को बिन मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई ।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई ।।७·१५।।

खेलन चोर-मिहीचनि आजु गई हुती पाछिले द्यौस की नाईं ।
आली कहा कहौं एक भई मतिराम नई यह बात तहाँई ।
एकहि भौन दुरे इक संग ही अंग सों अंग छुवायो कन्हाई ।
कंप छुट्यो घन स्वेद बढ़्यो तनु रोम उठ्यो अँखियाँ भरि आईं ।।७·१६।।

क्यों इन आँखिन सों निरसंक ह्वै मोहन को तनपानिप पीजै ।
नेक निहारे कलंक लगै इहि गाँव बसे कहो कैसे के जीजै ।
होत रहै मन यों मतिराम कहूँ बन जाइ बड़ो तप कीजै ।
ह्वै बनमाल हिये लगिये अरु ह्वै मुरली अधरारस पीजै ।।७·१७।।

बैठी तिया गुरु लोगन मैं रति तें अति सुंदर रूप बिसेखी ।
आयो तहाँ मतिराम सुजान मनोभव सों बढ़ि कांति उरेखी ।
लोचन रूप पियो ही चहैं अरु लाजनि जात नहीं छबि पेखी ।
नैन नवाय रही हियमाल में लाल की मूरति लाल में देखी ।।७·१८।।

मतिराम

कानन लौं लागे मुसकान प्रेमपागे लोने,
लाजभरे लागे लोल लोचन अनंग तें।
भारु धरि भुजनि डुलावति चलति मंद,
औरै ओप उलहत उरज उतंग तें।
मतिराम जोबन-पवन की झकोर आय,
बढ़िकै सरस रस तरल तरंग तें।
पानिप अमल की झलक झलकन लागी,
काई-सी गई है लरिकाई कढ़ि अंग तें॥७·१९॥



: ८ :

बिहारी

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परें स्याम हरित दुति होय ॥ ८·१ ॥

फिरि फिरि चित उत ही रहत टुटी लाज की लाव ।
अंग अंग छबि-झौंर में भयो भौंर की नाव ॥ ८·२ ॥

कीनेहूँ कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौन ।
भौ मनमोहन-रूप मिलि पानी में को लौन ॥ ८·३ ॥

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात ।
भरे भौन में करत हैं नैननि ही सों बात ॥ ८·४ ॥

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं बिकास इहिं काल ।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल ॥ ८·५ ॥

मंगल बिंदु सुरंग, मुख ससि केसर-आड़ गुरु ।
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन-जगत ॥ ८·६ ॥

रससिँगार मंजन किये कंजन-भंजन दैन ।
अंजन-रंजनहूँ बिना खंजन गंजन नैन ॥ ८·७ ॥

बैठि रही अति सघन बन पैठि सदन-तन माँह ।
निरखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह ॥ ८·८ ॥

सायक-सम मायक नयन रँगे त्रिबिध रँग गात ।
झखौ बिलखि दुरि जात जल लखि जलजात लजात ॥ ८·९ ॥

कहा भयौ जौ बीछुरे मो मन तो मन साथ ।
उड़ी जाति कितहूँ गुड़ी तऊ उड़ायक-हाथ ॥८·१०॥

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात ॥८११॥

जब जब वै सुधि कीजियै तब तब सब सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहैं आँखौ लागति नाहिं ॥८१२॥

कौन सुनै कासों कहौं सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी ज्यौ लेत हैं ये बदरा बदराह ॥८१३॥

अंग अंग नग जगमगै दीपसिखा-सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ो उजेरो गेह ॥८१४॥

छुटी न सिसुता की झलक झलक्यौ जोबन अंग।
दीपति देह दुहूँनि मिलि दिपति ताफता रंग ॥८१५॥

पत्रा ही तिथि पाइयत वा घर के चहुँ पास।
नितप्रति पून्योई रहै आनन-ओप-उजास ॥८१६॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा बिपति-बिदारनहार ॥८१७॥

तंत्री-नाद कबित्त-रस सरस राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग ॥८१८॥

नैंक न झुरसी बिरह-जर नेह-लता कुम्हिलाति।
नित नित होति हरी हरी खरी झालरति जाति ॥८१९॥

केसरि कै सरि क्यों सकै चंपक कितक अनूप।
गात-रूप लखि जात दुरि जातरूप को रूप ॥८२०॥

मकराकृत गोपाल के कुंडल सोहत कान।
धँस्यौ मनौ हिय-घर समर ड्यौढ़ी लसत निसान ॥८२१॥

खौरि-पनच भृकुटी-धनुष बधिक-समर तजि कानि।
हनत तरुन-मृग तिलक-सर सुरक भाल भरि तानि ॥८२२॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जल होय ॥८२३॥

करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़त नीचु।
दीनेहूँ चसमा चखनि चाहै लहै न मीचु ॥८२४॥

जपमाला छापा तिलक सरै न एको काम ।
मन काँचै नाँचै बृथा साँचै राँचै राम ।।८·२५।।

आवत जात न जानियत तेजहिं तजि सियरान ।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ खरो पूस-दिन-मान ।।८·२६।।

तजि तीरथ हरि-राधिका तन-दुति करि अनुराग ।
जिहिँ ब्रजकेलि निकुंज-मग पग पग होत प्रयाग ।।८·२७।।

कौड़ा आँसू बूँद, कसि साँकर बरुनी सजल ।
कीने बदन निमूँद, दृग मलंग डारे रहत ।।८·२८।।

गिरि तें ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हजार ।
वहै सदा पसु नरन कौं प्रेम-पयोधि पगार ।।८·२९।।

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार ।।८·३०।।

आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की राति ।
साहस ककै सनेहबस सखी सबै ढिग जाति ।।८·३१।।

स्वारथ सुकृत न स्रम बृथा देखु बिहंग बिचारि ।
बाज पराये पानि परि तू पच्छीन न मारि ।।८·३२।।

तीज परब सौतिन सजे भूषन बसन सरीर ।
सबै मरगजे मुंह करीं वहै मरगजे चीर ।।८·३३।।

भूषन-भार सँभारिहै क्यौं इहि तन सुकुमार ।
सूधें पाय न धरि परत सोभा ही के भार ।।८·३४।।

सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छबि होति ।
जल-चादर के दीप लौं जगमगाति तनजोति ।।८·३५।।

लिखन बैठि जाकी सबिहि गहि गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ।।८·३६।।

तिय कित कमनैती पढ़ी बिनु जिह भौंह-कमान ।
चलचित-बेझो चुकति नहिं बंक-बिलोकनि-बान ।।८·३७।।

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर-चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन-हियैं दई नई यह रीति ।।८·३८।।

ऊँचे चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत।
झलकित दृग मुलकित बदन तन पुलकित किहिं हेत ।।८३९।।

रनित भृंग-घंटावली झरित-दान-मधुनीर।
मंद मंद आवत चल्यौ कुंजर-कुंज-समीर ।।८४०।।

लपटी पुहुप पराग-पट सनी स्वेद-मकरंद।
आवति नारि नवोढ़ लौं सुखद बाय गति मंद ।।८४१।।

लाल तिहारे रूप की कहौ रीति यह कौन।
जासों लागै पलक दृग लागै पलक पलौ न ।।८४२।।

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाय।
सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाय ।।८४३।।

मोर मुकुट की चंद्रकनि यौं राजत नँदनद।
मनु ससि-सेखर की अकस किय सेखर सतचद ।।८४४।।

अधर धरत हरि के परत ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस को बाँसुरी इंद्रधनुष-रँग होति ।।८४५।।

नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित करी यहि दिसि नंदकिसोर ।।८४६।।

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहनि हँसे देन कहै नटि जाय ।।८४७।।

पावस घन अँधियार मैं रह्यौ भेद नहिं आन।
राति-द्यौस जान्यौ परत लखि चकई चकवान ।।८४८।।

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोबन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ ।।८४९।।

छकि रसाल-सौरभ-सने मधुर माधवी-गंध।
ठौर ठौर झूमत झँपत भौंर-झौंर मधु-अंध ।।८५०।।

बिरह विकल बिनहीं लिखी पाती दई पठाय।
आँक-बिहीनीयौ सुचित सूने बाँचत जाय ।।८५१।।

छिप्यौ छबीलो मुख लसै नीले आँचल चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी के नीर ॥८५२॥

नावक-सर से लाय कै तिलक तरुनि इत ताकि।
पावक-झर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि ॥८५३॥

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट पट झीन।
मानहुँ सुर-सरिता बिमल जल उछरत जुग मीन ॥८५४॥

अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू जिहि बस होत सुजान ॥८५५॥

चिरजीवौ जोरे जुरै क्यौं न सनेह गँभीर।
को घटि ये बृषभानुजा वे हलधर के बीर ॥८५६॥

सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर ॥८५७॥

सोहत ओढ़े पीतपट स्याम सलोने गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतप परचो प्रभात ॥८५८॥

: ९ :

भूषण

गरुड़ को दावा जैसे नाग के समूह पर दावा नाग-जूह पर सिंह-सिरताज को ।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर दावा सबै पच्छिन के गोल पर बाज को ।
भूषण अखंड नवखंड महिमंडल मैं तम पर दावा रबि-किरन-समाज को ।
पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौं जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ।।९.१।।

बारिधि के कुंभभव घन बन दावानल तिमिर पै तरनि को किरन-समाज हौ ।
कंस के कन्हैया कामदेवहू के नीलकंठ कैटभ के कालिका बिहंगम के बाज हौ ।
भूषण भनत सबै असुर के इंद्र पुनि पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ ।
रावन के राम कार्तबीर्ज के परसुराम दिल्लीपति दिग्गज के सिंह सिवराज हौ ।।९.२।।

साजि चतुरंग-सैन अंग मैं उमंग धारि सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है ।
भूषण भनत नाद-बिहद नगारन के नदीनद मद गैबरन के रलत है ।
ऐल फैल खैल भैल खलक मैं गैल-गैल गजन की ठेल पेल सैल उसलत है ।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत है ।।९.३।।

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के नाहीं ठहराने रावराने देस-देस के ।
नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि बाजत निसाने सिवराजजू नरेस के ।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के ।
दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे, केरा के-से पात बिहराने फन सेस के ।।९.४।।

जिन फन फुतकार उड़त पहार भारे कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो ।
बिष जाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो ।
कीन्हों जेहि पान पयपान सो जहान कुल कोलहू उछलि जल सिंधु खलभलिगो ।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को अखिल-भुजंग-मुगलद्दल निगलिगो ।।९.५।।

कोकनद नैनन तें कज्जल कलित छूटे आँसुन की धार तें कलिंदी सरसाति है।
मोतिन की लरैं गरैं छूटि परैं गंग छबि सेंदुर सुरंग सरसुती दरसाति है।
भूषण भनत महाराज सिवराज बीर रावरे सुजस ये उकति ठहराति है।
जहाँ जहाँ भागति हैं बैरि-बधू तेरे त्रास तहाँ तहाँ मग में त्रिबेनी होति जाति है ॥९·६॥

रैयाराव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह भूषन भनत गजराज जोम जमके।
भादौं की घटा सी उठि गरद गगन घिरै सेलैं समसेरैं फिरैं दामिनि-सी दमके।
खान उमरावन के आन राजा रावन के सुनि सुनि उर लागैं घन कैसे घमके।
बैयर बगारन की अरि के अगारन की लाँघतीं पगारन नगारन के धमके ॥९·७॥

भुज-भुजगेस की बैसंगिनी भुजंगिनी-सी खेदि-खेदि खातीं दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति मीन पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज भूषन सकै करि बखान को बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥९·८॥

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलैभानु कैसी फारैं तमतोम-से गयंदन के जाल को।
लागति लपकि कंठ बैरिन के नागिन-सी रुद्रहिं रिझावै दै-दै मुंडन की माल को।
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को ॥९·९॥

डंका के दिये तें दल डंबर उमंड्यो उडमंड्यो उडमंडल लौं खुर की गरद्द है।
जहाँ दारा साह बहादुर के चढ़त पैंड पैंड में मढ़त मारू राग बंबनद्द है।
भूषन भनत घने घुम्मत हरौलवारे किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद्द है।
हद्द न छपद्द महि मद्द पर नद्द होत कद्द नभनद्द से जलद्द दल दद्द है ॥९·१०॥

बन उपबन फूले अंबनि के भौंर भूले
अवनि सोहात सोभा और सरसाई है।
अलि मदमत्त भये केतकी बसंती फूली
भूषन, बखानै सोभा सबै सुखदाई है।
बिषम बिडारिबे को बहत समीर मंद
कोकिला की कूक कान कानन सुनाई है।
इतनो संदेसो है जू पथिक तिहारे हाथ
कहो जाय कंत सों बसंत रितु आई है ॥९·११॥

भूषण

कारो जल जमुना को काल सो लगत आली
छाइ रह्यो मानो यहु बिष काली नाग को।
बैरिन भई है कारी कोयल निगोड़ी यह
तैसो ही भँवर कारो बासी बन बाग को।
भूषन भनत कारे कान्ह को बियोग हिये
सबै सुखदाई जो करैया अनुराग को।
कारो घन घेरि घेरि मारयो अब्र चाहत है
एते पर करति भरोसो कारे काग को ॥९.१२॥

: १० :

देव

सूनो कै परम पद ऊनो कै अनन्त मद,
नूनो कै नदीस नद इंदिरा झुरै परी।
महिमा मुनीसन की सम्पति दिगीसन की,
ईसन की सिद्धि ब्रज-बीथी बिथुरै परी।
भादों की अँधेरी अधिराति मथुरा के पथ,
पाय कै सँयोग देव देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन अपार परब्रह्म-रासि,
जसुदा के कोरे एक बार ही कुरै परी ।।१०.१।।

ऐसो जौ हौं जानतो कि जैहै तू बिषै के संग,
एरे मन मेरे हाथ-पाँव तेरो तोरतो।
आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो।
चलन न देतो देव चंचल अचल करि,
चाबुक चितावनीन मारि मुँह मोरतो।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे सो बाँधि,
राधाबर बिरुद के बारिधि मैं बोरतो ।।१०.२।।

धार में धाय धँसीं निरधार ह्वै जाय फँसीं उकसीं नहिं उघेरी।
री अँगराय गिरीं गहिरी गहि फेरे फिरीं न घिरीं नहिं घेरी।
देव कछू अपनो बस ना रसलालच लाल चितै भइँ चेरी।
बेगि ही बूड़ि गईं पँखियाँ अँखियाँ मधु की मखिया भइँ मेरी ।।१०.३।।

साँसन ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि।
जीव रह्यो मिलिबेई की आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन तें मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि ॥१०४॥

डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झिँगूला सोहै तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै केकी कीर बहरावैं देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारो करै राई लोन,
कंजकली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीपजू को बालक बसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ॥१०५॥

फटिक सिलानि सों सुधारयो सुधामंदिर,
उदधि दधि की सी अधिकाई उमँगै अमंद।
बाहेर तें भीतर लौं भीति न दिखैए देव,
दूध कैसो फेनु फैल्यो आँगन फरसबन्द।
तारा सी तरुनि तामैं ठाढ़ी झिलमिल होति,
मोतिन की जोति मिली मल्लिका को मकरंद।
आरसी से अंबर में आभा सी उज्यारी लागै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लैगत चंद ॥१०६॥

बरुनी बघंबर में गूदरी पलक दोऊ,
कोए राते बसन, भगौंहें भेष रखियाँ।
बूड़ी जल ही मैं दिन जामिनि हूँ जागैं, भौंहें
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ।
अँसुवा फटिकमाल लाल डोरे सेल्ही पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ।
दीजिए दरस देव कीजिए सँजोगिनि ए
जोगिनि ह्वै बैठी हैं बियोगिनि की अँखियाँ ॥१०७॥

झहरि झहरि झीनी बूँद है परति मानो,
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन मैं।
आइ कह्यो स्याम मोसौं चलौ झूलिबे को आप,
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन मैं।
चाहत उठयोई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गये भाग मेरे जागि वा जगन मैं।
आँखि खोलि देखौं तौ न घन हैं न घनस्याम,
वेई छाई बूँदें मेरे आँसू ह्वै दृगन मैं ॥१०८॥

: ११ :

घनआनंद

परकारज देह कों धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान को लै बरसौ ॥११·१॥

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, वारी,
तो सो और कौन मनै ढरकौहीं बानि दै।
जगत के प्रान ओछे बड़े कों समान,
घनआनँद निधान सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोहि प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहिचानि दै।
बिरह-बिथा की मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि
धूरि तिन पायनि की हाहाँ नैकु आनि दै ॥११·२॥

आनाकानी आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा त्यों न दीठि डोलिहै।
मौनहू सों देखिहौं, कितेक पन पालिहौ जू,
कूक-भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै।
जान घनआनँद ! यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगो टेक टरें कौन धौं मलोलिहै।
रूई दियें रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥११·३॥

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।
रति-रसना-सवाद-पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सों माजिहौं।
जान प्यारे प्रान अंग-अंग रुचि-रंगन मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख माँजिहौं।
कब घनआनँद ढरौंही बानि देखें,
सुधा हेत मन-घट दरकनि सुठि राँजिहौं ॥११४॥

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥११५॥

गुरनि बतायौ राधामोहन हू गायो सदा,
सुखद सुहायौ वृन्दावन गाढ़े गहि रे।
अद्भुत अभूत महिमंडल परे तें परे
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहि रे।
आनँद को घन छायो रहत निरन्तर ही
सरस सुदेस सो पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे ॥११६॥

पहिलें अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि नेह कै तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार-मँझार, दई गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनँद आपने चातिक कौं, गुन बाँधि लै, मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यों बिस घोरियै जू ॥११७॥

चंद चकोर की चाह करै, घन आनँद स्वाति पपीहा कौं पावै।
ज्यौं त्रसरेनि के ऐन बसै रबि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
मोसो तुम्हैं सुनो जान कृपानिधि, नेह निबाहिबो यौं छबि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सु रंकहि लै निज अंक बसावै ॥११८॥

बिन बूझ असूझ बिरंचि रचे सपने हूँ न लागनि गैल गई।
जिन बावरी रोग-बियोग-भरी रचि ये हम कौं तम जोग दई।
घनआनँद मीत सुजान लखें अभिलाषनि लाखनि भाँति रई।
मुख माधुरी पान कौं आतुर पै अखियाँ दुखियाँ कित भोरी भई ।।११.९।।

बहुत दिनान के अवधि-आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।
कहि कहि आवन सँदेसो मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को।
झूठी बतियानि की पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान की।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को ।।११.१०।।



: १२ :

द्विजदेव

डारे कहूँ मथनि बिसारे कहूँ घी को घड़ा,
बिकर बगारे कहूँ माखन मठा मही।
भ्रमि भ्रमि आवति चहूँधा तैं सु याही मग,
प्रेम पय पूर के प्रवाहन मनौं बही।
झरसि गई धौं कहूँ काहू की बियोग झार,
बार बार बिकल बिसूरति यही यही।
ए हो ब्रजराज एक ग्वालिन कहूँ की आज,
भोर ही तें द्वार पै पुकारति दही दही ॥१२.१॥

बोलि हारे कोकिल बुलाइ हारे केकीगन,
सिखै हारीं सखी करि जुगति नई नई।
द्विजदेव की सौं लाज बैरिन कुसंग इन,
अँगन ही आपने अनीति इतनी ठई।
हाय इन कुंजन तें पलटि पधारे स्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधामई।
आवन समै में दुखदाइनि भई री लाज,
चलन समै में चल पलन दगा दई ॥१२.२॥

सुर ही के भार सूधे सबद सुकीरन के,
मंदिरन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
द्विजदेव त्यौं हीं मधु भारन अपारन सों
नैंकु झुकि झूमि रहे मोगरे मरुअ दौन।

खोलि इन नैननि निहारौं तौ निहारौं कहा
सुखमा अभूत छाइ रही प्रति भौन भौन।
चाँदनी के भारन दिखात उनयो सो चंद
गंध ही के भारन बहत मंद मंद पौन ॥१२.३॥

आज सुभाइन ही गई बाग बिलोकि प्रसून की पाँति रही पगि।
ताही समै तहँ आए गुपाल तिन्हैं लखि औरो गयो हियरौ ठगि।
पै द्विजदेव न जानि परचो धौं कहा तिहि काल परे अँसुवा जगि।
तू जो कहै सखि लोनो सरूप सो मो अँखियान को लोनी गई लगि ॥१२.४॥

घहरि घहरि घन सघन चहूँघा घेरि,
छहरि छहरि बिष बूँद बरसावै ना।
द्विजदेव की सौं अब चूकि मति दाँव अरे,
पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना।
फेरि ऐसो औसर न ऐहै तेरे हाथ अरे,
मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना।
हौं तौ बिनु प्रान प्रान चाहति तज्योई अब,
कत नभचंद तू अकास चढ़ि धावै ना ॥१२.५॥

बाग बिलोकनि आई इतै वह प्यारी कलिंदसुता के किनारे।
सो द्विजदेव कहा कहिए बिपरीत जो देखति मो दृग हारे।
केतकी चंपक जाति जपा जग भेद प्रसून के जे न निहारे।
ते सिगरे, मिस पातन के छबि वाही सौं माँगत हाथ पसारे ॥१२.६॥

आवत चली है यह बिषम बयारि देखि,
दबे दबे पाँइन किवारिन लरजि दै।
क्वैलिया कलंकिनि को दै री समुझाइ मधु-
माती मधुपालिनि कुँचालिनि तरजि दै।
आज ब्रजरानी के बियोग को दिवस तातें,
हरें हरें कीर बकबादिन हरजि दै।
पी-पी कै पुकारिबे कौं खोलैं ज्यों न जीहन,
पपीहन के जूहन त्यौं बावरी बरजि दै ॥१२.७॥

भूलें भूले भौंर बन भाँवरें भरैंगे कहूँ,
फूलि फूलि किंसुक जके से रहि जाइहै।
द्विजदेव की सौं वह कूजनि बिसारि कूर
कोकिल कलंकी ठौर ठौर पछिताइहै।
आवत बसंत के न ऐहैं जो पै स्याम तो पैं,
बावरी बलाइ सों हमारे हूँ उपाइ है।
पीहैं पहिले ही तें हलाहल मँगाइ या
कलानिधि की एकौ कला चलन न पाइहै ॥१२.८॥

: १३ :

भारतेन्दु

नैन भरि देखौं गौकुलचंद।
स्याम बरन तन खौर बिराजत अति सुंदर नँद-नंद॥
बिथुरी अलकैं मुख पै झलकैं मनु दोउ मन के फंद।
मुकुट लटक निरखत रबि लाजत छबि लखि होत अनंद॥
सँग सोहत बृषभानु-नंदिनी प्रमुदित आनँद-कंद।
'हरीचंद' मन लुब्ध मधुप तहँ पीवत रस मकरंद॥१३·१॥

नैना वह छबि नाहिंन भूले।
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले॥
वह आवनि वह हंसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरै।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुँ कोरै॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परबस भए फिरत हैं नैना एक छन टरत न टारे।
'हरीचंद' ऐसी छबि निरखत तन मन धन सब हारे॥१३·२॥

अटा पै मग जोवत हैं ठाढ़ी।
यहि मारग हरि को रथ ऐहै प्रेम-पुलक तन बाढ़ी॥
कोउ खिरकिन छज्जन पै ठाढ़ी कोउ द्वारे मग जोहैं।
करि श्रृंगार स्यामसुंदर-हित प्रेम भरी अति सोहैं॥
यह आयो वह आयो सजनी कहति सबै ब्रजनारी।
लै लै भेंट सामुहे आईं भरि कै कंचन थारी॥

बीरी देत करति न्योछावर लै आरती उतारैं।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया पैं अपनो तन मन वारैं ॥१३·३॥

याही सों घनस्याम कहावत।
द्रवत दीन-दुरदसा बिलोकत करुना रस बरसावत॥
भींगो सदा रहत हिय रस सों जन-मन-ताप जुड़ावत।
'हरीचंद' से 'चातक जन के जिय की प्यास बुझावत ॥१३·४॥

हरि-तन करुना-सरिता बाढ़ी।
दुखी देखि निज जन बिनु साधन उमगि चली अति गाढ़ी॥
तोरि कूल मरजादा के दोउ न्याव-क़रार गिराए।
जित तित परे करम फल-तरुगन जड़ सों तोरि बहाए॥
अचल बिरुद गमीर भँवर गहि महा पाप गन बोरे।
असहन पवन बेग अति बेगहि दीन महान हलोरे॥
भरि दीने जन हृदय-सरोवर तीनहुँ ताप बुझाई।
'हरीचंद' हरि-जस-समुद्र में मिली उमगि हरखाई ॥१३·५॥

गोपिन बियोग अब सही नहीं जात मोपै,
कब लौं निठुर होय मैन-बान मारोगे।
'हरीचंद' आप सों पुकारे कहौं बार बार,
बेगहि कृपाल अबै गोकुल सिधारोगे।
कहत निहारि कर जोरि हम पूछैं जौन,
राधा-रौन ताको कौन उत्तर बिचारोगे।
आँसुन को नीर जबै बाढ़ैगो समुद्र तबै,
कच्छ रूप धारोगे कै मच्छ रूप धारोगे ॥१३·६॥

जदपि उँचाई धीरताई गरुआई आदि,
ए रे गजराज तेरी सबही बड़ाई है।
दान-धारा दै दै सदा तोषत सबन नित
हिंसा सों बिरत तऊ बल अधिकाई है।

तासौं 'हरीचंद' मरजाद पै रहन नीको,
काक चुगलन की सु जासों बनि आई है।
बिरद बढ़ावें ये न दूर कर इन्हें तेरे,
कान की चपलताई भौंर दुखदाई है ॥१३.७॥

फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाइ कूर,
कोकिल कुहुकि कल सबद सुनावैगो।
त्यौंही 'हरीचंद' सबै गावैगो धमार धीर,
हरन अबीर बीर सब ही उड़ावैगो।
सावधान होहु रे बियोगिनी सम्हारि तन,
अतन तनक ही में तापन तें तावैगो।
धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम,
कहर मचावत बसंत अब आवैगो ॥१३.८॥

अब और के प्रेम के फंद परे हमें पूछत कौन, कहाँ तू रहै।
अहै मेरेइ भाग की बात अहो तुमसों न कछू 'हरीचंद' कहै।
यह कौन सी रीति अहै हरिजू तेहि मारत हौ तुमको जो चहै।
वह भूलि गयो जो कही तुमने हम तेरे अहैं तू हमारी अहै ॥१३.९॥

हम चाहत हैं तुमको जिउ से तुम नेकहू नाहिनै बोलती हौ।
यह मानहु हैं जो 'हरीचंद' कहै केहि हेत महाबिष घोलती हौ।
तुम औरन सों नित चाह करौ हमसों हिय गाँठ न खोलती हौ।
इन नैन के डोर बँधी पुतरी तुम नाचत औ जग डोलती हौ ॥१३.१०॥



: १४ :

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

गंगावतरण

सप्तम सर्ग

तब नृप करि आचमन मारजन सुचि-रुचि-कारी।
प्रानायाम पुनीत साजि चित-वृत्ति सुधारी।
बहुरि अंजली बाँधि ध्यान बिधि को बिधिवत गहि।
माँगी गंग उमंग-सहित पूरब प्रसंग कहि ॥ १ ॥

बद्ध-अंजली देखि भूप बिनवत मृदु बानी।
मुसकाने बिधि आनि चित्त "चिल्लू-भर पानी"।
लागे करन बिचार बहुरि जग-हित-अनहित पर।
पाप-पुन्य-फल-उचित-लाभ-मर्याद खचित पर ॥ २ ॥

पुनि गुनि बर बरदान आपनो औ संकर को।
सगर-सुतनि को साप-ताप तप नर-पति बर को।
सुमिरि अखिल ब्रह्मांड-नाथ मन माथ नवायौ।
सब संसय करि दूरि गंग दैबो ठिक ठायौ ॥ ३ ॥

किए सजग दिग-पाल व्याल-पति-हृदय दृढ़ायौ।
कोल कमठ पुचकारि भूधरनि धीर धरायौ।
स्वस्ति-मन्त्र पढ़ि पानि तंत्र मुद-मंगल-कारी।
लियो कमंडल हाथ चतुर चतुरानन-धारी ॥ ४ ॥

इत सुरसरि की धाक धमकि त्रिभुवन भय-पागे।
सकल सुरासुर बिकल बिलोकन आतुर लागे।
दहलि दसों दिग-पाल बिकल-चित इन उत धावत।
दिग्गज दिग दंतनि दबोचि दृग भमरि भ्रमावत॥ ५॥

नभ-मंडल थहरान भानु-रथ थकित भयो छन।
चंद चकित रहि गयो सहित सिगरे तारागन।
पौन रह्यौ तजि गौन गह्यौ सब मौन सनासन।
सोचत सबै सकाइ कहा करिहैं कमलासन॥ ६॥

बिंध्य-हिमाचल-मलय-मेरु-मंदर-हिय हहरे।
ढहरे जदपि पषान ठमकि गउ ठामहिं ठहरे।
थहरे गहरे सिंधु पर्ब बिनहूँ लुरि लहरे।
पै उठि लहर-समूह नैंकु इत उत नहिं ढहरे॥ ७॥

गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।
निज तरङ्ग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं।
लै स-बेग-बिक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्म-लोक कौं बहुरि पलटि कंदुक-इव आऊँ॥ ८॥

सिव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन माखे।
बाढ़ी-गंग-उमंग-भंग पर उर अभिलाखे।
भए सँभरि सन्नद्ध भंग कै रंगु रँगाए।
अति दृढ़ दीरघ सृंग देखि तापर चलि आए॥ ९॥

बाघंबर कौ कलित कच्छ कटि-तट सौं नाध्यौ।
सेसनाग कौ नागबंध तापर कसि बाँध्यौ।
ब्याल-माल सौं भाव बाल-चंदहिं दृढ़ कीन्यौ।
जटा-जाल कौ झाल-व्यूह सुह्वर करि लीन्यौ॥१०॥

मुंड-माल यज्ञोपवीत कटि-पट अटकाए।
गाड़ि सूल सृंगी डमरू तापर लटकाए।
बर बाहँनि करि फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि।
बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचैकाइ चाय मिनि॥११॥

तमकि ताकि भुज-दंड चंड फरकत चित चोपे।
महि दबाइ दुहुँ पाय कछुक अंतर सौं रोपे।
मनु बल बिक्रम-जुगल-खंभ जग-थंभन-हारे।
धीर-धरा पर अति गँभीर-दृढ़ता-जुत धारे ॥१२॥

जुगल कंध बल-संध हुमकि हुमसाइ उचाए।
दोउ भुज-दंड उदंड तोलि ताने तमकाए।
कर जमाइ करिहायँ नैन नभ-ओर लगाए।
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए ॥१३॥

बल बिक्रम पौरुष अपार दरसत अँग अँग तैं।
बीर रौद्र दोउ रस उदार झलकत रँग-रँग तैं।
मनहुँ भानु-सितभानु-किरन-बिरचित पट बर की।
झलक दुरंगी देति देह-द्युति सिवसंकर की ॥१४॥

बचन-बद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत।
दियौ ढारि बिधि गंग-बारि मंगल उच्चारत।
चली बिपुल-बल-बेग-बलित बाढ़ति ब्रह्मद्रव।
भरति भुवन भय-भार मचावति अखिल उपद्रव ॥१५॥

निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ-मंडल खंडति।
धाई धार अपार बेग सौं बायु बिहंडति।
भयौ घोर अति सब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
महा मेघ मिलि मनहुँ एक संगहिं सब गर्जे ॥१६॥

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके बाहन रुकत नैंकु नहिं बिधि हरि हर के।
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थरके।
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके ॥१७॥

कढ़ि-कढ़ि गृह सौं बिबुध बिबिध जाननि पर चढ़ि-चढ़ि।
पढ़ि-पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि।
सुर सुंदरी ससंक बंक दीरघ दृग कीने।
लगीं मनावन सुकृत हाथ काननि पर दीने ॥१८॥

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति।
सुर-पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति।
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा ॥१९॥

बिपुल बेग सौं कबहुँ उमगि आगे कौं धावति।
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिँ चलि आवति।
फटिकसिला के बर बिसाल मन बिस्मय बोहत।
मनहुँ बिसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत ॥२०॥

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी।
कैधौं आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी।
मीन-मकर-जल-व्यालनि की चल चिलक सुहाई।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल-छबि-छाई ॥२१॥

रुचिर रजतमय कै बितान तान्यौ अति बिस्तर।
झिरतिँ बूँद सो झिलमिलाति मोतिनि की झालर।
ताके नीचें राग-रंग के ढंग जमाए।
सुरबनितनि के बृन्द करत आनद बधाए ॥२२॥

बर-बिमान गज-बाजि-चढ़े जो लखत देव गन।
तिनके तमकत तेज दिव्य दमकत आभूषन।
प्रतिबिंबित जब होत परम प्रसरित प्रबाह पर।
जानि परत चहुँ ओर उए बहु बिमल बिभाकर ॥२३॥

कबहुँ सुधार अपार बेग नीचे कौं धावै।
हरहराति लहराति सहस जोजन चलि आवै।
मनु बिधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य-खेत-उतपन्न हीर की रासि उसावत ॥२४॥

कै निज नायक बँध्यो बिलोकत ब्याल-पास तैं।
तारनि की सेना उदंड उतरति अकास तैं।
कै सुरसुमनसमूह आनि सुर-जूह जुहारत।
हर हर करि हर सीस एक संगहि सब डारत ॥२५॥

छहरावति छबि कबहुँ कोउ सित सघन घटा पर।
फबति फैलि जिमि जोन्ह-छटा हिम-प्रचुर पटा पर।
तिहिं घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै।
जल-प्रतिबिंबित दीप-दाम दीपति सी दसकै ॥२६॥

कबहुँ बायु-बल फूटि छूटि बहु बपु धरि धावै।
चहुँ दिसि तैं पुनि डटति सटति सिमटति चलि आवै।
मिलि-मिलि द्वै-द्वै चार-चार सब धार सुहाई।
फिर एकै ह्वै चलति कलित बल बेग बढ़ाई ॥२७॥

जैसैं एकै रूप प्रबल माया बस मैं परि।
बिचरत जग मैं अति अनूप बहु बिलग रूप धरि।
पै जब ज्ञान-बिधान ईस-सनमुख लै आवै।
तब एकै ह्वै बहुरि अमित आतम-बल पावै ॥२८॥

जल सौं जल टकराइ कहूँ उच्छलत उमंगत।
पुनि नीचैं गिरि गाजि चलत उत्तंग तरंगत।
मनु कागदी कपोत गोत के गोत उड़ाए।
लरि अति ऊँचैं उलरि गोति गुथि चलत सुहाए ॥२९॥

कहूँ पौन-नट निपुन गौन कौ बेग उवारत।
जल-कंदुक के बूंद पारि पुनि गहत उछारत।
मनौ हंस-गन मगन सरद-बादर पर खेलत।
भरत भाँवरैं जुरत मुरत उलहत अवहेलत ॥३०॥

कबहुँ बायु सौं बिचलि बंक-गति लहरति धावै।
मनहु सेस सित-बेस गगन तैं उतरत आवै।
कबहुँ फेन उफनाइ आइ जल-तल पर राजै।
मनुमुकतनि की भीर छीर-निधि पर छबि छाजै ॥३१॥

कबहुँ सुताड़ित ह्वै अपार-बल-धार-बेग सौं।
छुभित पौन फटि गौन करत अतिसय उदेग सौं।
देवनि के दृढ़ जान लगत ताके झकझोरे।
कोउ आँधी के पोत होत कोउ गगन-हिंडोरे ॥३२॥

उड़ति फुही की फाब फबति फहरति छबि-छाई।
ज्यौं परबत पर परत झीन बादर दरसाई।
तरनि-किरन तापर बिचित्र बहु रंग प्रकासै।
इंद्र-धनुष की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासै॥३३॥

मनु दिगंगना गंग न्हाइ कीन्हे निज अंगी।
नव भूषन नव रत्न-रचित सारी सत-रंगी।
गंगागम-पथ माहिँ भानु कैधौं अति नीकी।
बाँधी बंदनवार बिबिध बहु पटापटी की॥३४॥

इहिँ बिधि धावति धँसति ढरति ढरकति सुख-देनी।
मनहु सवाँरति सुभ सुरे-पुर की सुगम निसेनी।
बिपुल बेग बल बिक्रम कैँ ओजनि उमगाई।
हरहराति हरषाति संभु-सनमुख जब आई॥३५॥

भई थकित छबि-छकित हेरि हर-रूप मनोहर।
ह्वै आगहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर।
भयौ कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई।
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई॥३६॥

छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं।
थहरन के ढरि रंग परे उछरति तरंग मैं।
भयौ बेग उद्वेग पेँग छाती पर धरकी।
हरहरान धुनि बिघटि सुरट उघटी हर-हर की॥३७॥

भयौ हुतौ भ्रभंग-भाव जो भव-निदरन कौ।
तामैं पलटि प्रभाव परयौ हिय हेरि हरन कौ।
प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरै सुखकारी।
ह्वै थाई उतसाह भयौ रति कौ संचारी॥३८॥

कृपानिधान सुजान संभु हिय की गति जानी।
दियौ सीस पर ठाम बाम करि कैं मन मानी।
सकुचित ऐँचति अंग गंग सुख-संग लजानी।
जटा जूट-हिम-कूट सघन बन सिमिटि समानी॥३९॥

पाइ ईस कौ सीस-परस आनँद अधिकायौ।
सोइ सुभ सुखद निवास बास करिबौ मन ठायौ।
सीत सरस संपर्क लहत संकरहु लुभाने।
करि राखी निज अंग गंग कँ रंग भुलाने ।।४०।।

बिचरन लागी गंग जटा-गह्वर-बन-बीथिनि।
लहति संभु-सामीप्य-परम-सुख दिननि निसीथिनि।
इहिँ बिधि आनँद मैं अनेक बीते संबत्सर।
छोड़त छुटत न बनत ठनत नव नेह परस्पर ।।४१।।

यह देखि दुखित भूपति भए छित चिंता प्रगटी प्रबल।
अब कीजै कौन उपाय जिहिँ सुरसरि आवै अवनि-तल ।।४२।।

अष्टम सर्ग

गुनि नृप उर धरि धीर बरद संकर आराधे।
बिबिध जोग जप जज्ञ नेम व्रत संजम साधे।
इक पग ऊपर उनइ सनय बहु बिनय बखानी।
जोरि पानि मृदु बानी सानि ढारत दृग पानी ।। १ ।।

जय जय भव-भय-हरन बरन दुख-दंद दयामय।
जय जय तरुनादित्य तेज करुना-बरुनालय।
जय जय असरन-सरन-भरन जग-बिपति-बिदारन।
जय जय औढर-सरनि-ढरन सुरसरि-सिर-धारन ।। २ ।।

ध्यापक ब्रह्म,स्वरूप भूप करि सुर जिहिँ जानत।
कहि कहि अकह-अनूप-रूप जिहिँ बेब बखानत।
जय जय दीन-दयाल प्रनत-प्रतिपाल तुरानी।
काम-क्रोध-मद-मोह-रहित सेवक-हितकारी ।। ३ ।।

कीन्यौ नाथ सनाथ माथ सुरसरि जो धारी।
तुम बिन सकत सम्हारि कौन ताकौ बल भारी।
सबल सुरासुर कौ अपार भय-भार निवारयौ।
राख्यौ पैज-प्रमान दियौ बरदान सँभारयौ ।। ४ ।।

पै कृपाल नहि होइ कामना सफल हमारी।
भव लौं महि सिंचाइ पाइ सुरसरि-बर-बारी।
कृपा-कोर सौं सब कीजै कोउ सुगम प्रनाली।
जातैं सुरसरि आइ भरै धरनी-सुख-साली ॥ ५ ॥

सुनि बिनती गुनि दुखित दास संकर दिन-दानी।
निज बिलंब मन मानि सकुच बोले मृदु बानी।
अहो गंग सुभ-अंग अहो सुख-सागर-संगिनि।
करनि दुरित-भय-भंग तरल-उत्तंग-तरंगिनि ॥ ६ ॥

कीन्यौ अकथ अनूप उग्र तप भूप भगीरथ।
तब आगम तैं सुगम-करन-हित अगम परम पथ।
लहि बिधि सौं बरदान मान हमहूँ सौं पायौ।
तब उतरन-आतंक पूरि त्रिभुवन यहरायौ ॥ ७ ॥

तुम मन मानि सनेह सील पहिचानि पुरानी।
करि भूषित खम सीस भरी जग सुजस-कहानी।
हम तब सुख-प्रद परस पाइ इहिँ भाय भुमाने।
रहे राखि निज संग सरस बहु बरस बिताने ॥ ८ ॥

भई भूप की अति अनूप अभिलाष न पूरी।
जउ असाध्य स्रम साधि लही बिधि सौं निधि रूरी।
अब तिहिँ निरखि अधीर पीर कसकति अति उर मैं।
तातैं तुम जग जाइ सुजस पूरौं तिहुँ पुर मैं ॥ ९ ॥

हरहु पाप के दाप ताप के तुंज नसावौ।
सुर-पुर उर मैं महि-महिमा कौ चाघ उचावौ।
भए छार जरि सगर-कुमारन कौं निस्तारौ।
भूप भगीरऊ-प्रति-अनूप-कीरति बिस्तारौ ॥१०॥

बिलग न मानौ नैंकु प्रमानौ गिरा हमारी।
बसिहौ नित मो सीस कबहुँ ह्वैहो नहिं न्यारी।
नित तब धार अखंड जटा-मंडल तैं कढ़िहै।
जिहिं लहि परन प्रमोद गोद बसुधा की मढ़िहै ॥११॥

यह कहि कर गहि जटा सटा लौं सूँति सटाई।
बिंदु सरोवर ओर छोर ताकी लटकाई।
तातैं निकसि अपार धार परिपूरि सरोवर।
चली उबरि ढरि करि उदोत पट सोत धरा पर ॥११॥

नलिनी नीत पुनीत पावनी ललित ह्लादिनी।
इन तीनति सौं भई आनि प्राची-प्रसादिनी।
सुभ सुचच्छु बलसंध सिंधु सीता छुतुनीता।
इनसौं पच्छिम चली पढ़ति भू गति-गुन-गीता ॥१३॥

पै न भगीरथ चित चाहे पथ सौं महि आई।
यह लखि बिलखि भुवाल रहे चिंता अधिकाई।
आइ सरोवर-तीर धीर धरि भरि दृग बारी।
ह्वै आरत आधीन दीन बिनती उच्चारी ॥१४॥

जय ब्रह्मा संपत्ति-सार जय जय ब्रह्मद्रव।
जय महेस-मन-हरनि दरनि दुख-दंद-उतद्रव।
जय बृंदारक-बृंद-बंद्य जय हिमगिरि-नंदिनि।
जय जम-गन-मन-दंड-दान-अभिमान-विनिंदनि ॥१५॥

जदपि बक्र तउ सक्र-सदन को सरल निसेनी।
जउ नीचे कौं चलति उच्च पद तउ नित देनी।
जदपि छुभित अतिकांति सांति-दायति तउ मन की।
जउ उज्जल-जल-रूप तऊ रंजनि रुचि जन की ॥१६॥

देहु कृपा-अवलंब अंब त्र्यंबक-गुन धारौ।
भारत-भूमि पवित्र करौ बैभव बिस्तारौ।
सागर पूरि पताल पैठि तबँहूँ जस छावौ।
सगर-सुतनि कौं सोक सारि सुर-लोक पठावौ ॥१७॥

सुनि नृप-विनय निदेस गङ्ग गुनि मन महेस कौ।
सरित सातवीं होइ गह्यौ पथ पुन्य-बेस कौ।
भागीरथी पुनीत-नाम-धारिनि दुख-हारिनि।
तारिनि जम-गब-दाप पाप-संताप-निवारिनी ॥१८॥

भूप भगीरथ भए दिव्य स्यंदन चढ़ि आगे।
लगी गंग तिन संग भाग भारत के जागे।
सृंगनि सिखरनि तोरि फोरि ढाहति ढहरावति।
औघट घाट अघाट चली निस बाट बनावति ॥१९॥

प्रथम निकसि हिम-कलित कूल पर छबि छहराई।
पुनि चहुँ दिसि तैं ढरकि ढार धारा ह्वै धाई।
चँद्रकांत-चट्टान चंद्रिका परत सुहाई।
मनु पसीजि रस-भीजि सुधा-सरिता उपजाइ ॥२०॥

तिहँ प्रबाह मैं मिलित ललित हिमन्कन इमि दमकत।
सारद बारद माहिं मनौ तारा-गन चमकत।
कै बसुधा-सृङ्गार-हेत करतार सँवारी।
सुघर सेत सुख-सार तार-बाने की सारी ॥२१॥

कहुँ हिम ऊपर चलति कहूँ नीचैं धँसि धावति।
कहुँ गालनि बिच पैठि रंध्र-जालनि मग आवति।
सरद-घटा की बिज्जु-छटा मानौ लुरि लहरित।
ऊपर अध मधि माहिं मचल मंजुल छबि छहरति ॥२२॥

कहुँ अटूट बहु धार गिरति हिमकूट-तुंड तैं।
ऐरावत के सुंड मनहुँ लटकन भुसुंड तैं।
छटकि छीट छबि छाइ छत्र लौं छिति पर छहरै।
सुंड भरयौ जल मनहुँ फैलि फुफकारनि फहरै ॥२३॥

इमि हिम-खंड बिहाइ आइ पाहन-पथ मंडति।
ढरकि ढार इक डार चली गिरि खडनि खंडति।
फाँदति फैलति फटति सटति सिमिटति सुढंग सौं।
सृंगनि बिच बिच बढ़ी गग सरि भरि उमंग सौं ॥२४॥

कहुँ ढाहे ढोकनि ढुकाइ निज गति अवरोधति।
पुनि ढकेलि ढुरकाइ तिन्हैं पकरयौ मग सोधति।
कबहुँ चलति कतराइ बक नव बाट काटि गहि।
कबहुँ पूरि जल-पूर कूर ऊपर उमंडि बहि ॥२५॥

कहूँ बिस्जर थल पाइ बारि-बिस्तार बढ़ावति ।
लघु गुरु बीचि पसारि छंद-प्रस्तार पढ़ावति ।
कै दिग-दंती-दंत-दिव्य-दीरघ-पाटी पर ।
लिखति सतोगुन घोटि भूप-जस-रूप रुचिर बर ।।२६।।

पुनि कोऊ घाटी बीच मीचि जल-बेग बढ़ावति ।
ढुरकत ढोकनि खड़बड़ाइ धुनि-धूम मचावति ।
मनहु भूप कौ अति अनूप बर बिरद उचारति ।
जम,गन कौ दरि दभ खम ठोकति ललकारति ।।२७।।

हरहराति हर-हार सरिस घाटी सौं निकरति ।
भव-भय-भेक अनेक एक संगहि सब निगरति ।
अखिल हंस-बर-बंस घेरि साँकर वर धारे ।
मरमराइ इक संग कढ़त मनु खुलत किवारे ।।२८।।

कहुँ कोउ गह्वर गुहा माहिं घहरति घुसि घूमति ।
प्रवल वेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति ।
कढ़ति फोरि इक ओर घोर धुनि प्रतिधुनि पूरति ।
मानहु उड़ति सुरंग गूढ़ गिरि सृंगनि चूरति ।।२९।।

सकल सुरासुर सिद्ध नाग गुह्यक गिरि-बासी ।
इत उत हेरत हुरबरात हिय भरे उदासी ।
छाँड़ि जोग जप जज्ञ अज्ञ लौं चौंकि चकाए ।
जिहँ तहँ दौरत दुरत जुरत कर कान लगाए ।।३०।।

बिसद बितुंड दबाइ कुंडलित सुंड भुसुंडनि ।
भय भरि नैन भ्रमाइ धाइ पैठत जल-कुंडनि ।
चोते तिदुबे बाघ भभरि निज आघ भुलाए ।
जित तित दौरत दाबि पुच्छ अरु कान उठाए ।।३१।।

हरिन चौकड़ी भूलि दर्रानि दौरत कदराए ।
तरफरात बहुसृंग सृंग झाड़िनि अरुझाए ।
गहत प्लवंग उतंग सृंग कूदत किलकारत ।
उड़ि बिहंग बहु-रंग भयाकुल गगन गुहारत ।।३२।।

गुगा फारि फहराइ चलत फैलत बर बारी।
मानहुँ दुख-द्रुम-दलनकाज बिधि रचत कुठारी।
सगर सुतनि के दुरति-जूह पर कै मन-मरकी।
वृंत-ब्यूह रचि चलति सुकुति-सेना नर बर की ॥३३॥

कै त्रिताप के हरन हेत सुभ ब्यजन सुहायौ।
बिरचत रुचिर बिरंचि बिसद हिम-पटल-मढ़ायौ।
कै हीरक-मय मुकुट मजु करि महि देबी कौ।
सब लोकनि मैं करत मान ताकौ अति नीकौ ॥३४॥

इहि बिधि घाटिनि दरिनि कंदरिनि पैठति निकसति।
कहूँ सिमिटि घहराति कहूँ कल, धुनि-जुत-बिकसति।
कहूँ सरल कहुँ बक्र कहूँ चलि चारुचक्र-सम।
कहुँ सुढँग कहुँ करति भंग गिरि-सृंग सक्र-सम ॥३५॥

गंगोत्तरि तैं उतरि तरल घाटी मैं आई।
गिरि-सिर तें चलि चपल चंद्रिका मनु छिति छाई।
बक-समूह इक संग गोति गिरि-तुंग-सिखर तैं।
गए फैलि दुहुँ बाहु बीच कै फाबि फहर तैं ॥३६॥

तहाँ राजऋषि जह्नु परम हरि-भक्त प्रतापी।
द्वादस-अच्छर-महामँत्र के अबिकल-जापी।
पूरि भूरि अनुराग जाग कोउ सुम ठान्यौ हो।
सकल देव-मुनि-गोत न्यौत सानंद आन्यौ हो ॥३७॥

ताकौ वह मख बाट बिसद वह ठाट सजायौ।
औचक गग-तरङ्ग आइ करि भग बहायौ।
भयो जह्नु-उर कोप जज्ञ कौ लोप निहारत।
आमंत्रित द्विज-देव-सिद्ध-अपमान बिचारत ॥३८॥

सुमिरत हरि कौतुकिहि कछुक कौतुक उर आयौ।
उठि सम्हारि धृति धारि सबनि सादर सिर नायौ।
हरि माया की परम प्रबल महिमा मन धारी।
हरि हरि करि हरषाइ अंजली उमगि पसारी ॥३९॥

ताकैं अंतर-ओक बसत गो-लोक-बिहारी।
सक्ति-सहित सुख-धाम भक्ति-बस जन-दुख-हारी।
जाकौ बिछुरन-छोभ अजौं सुरसरि उर राखति।
सफरिनि मिसि धरि अमित नैन दरसन अभिाषति ॥४०॥

यह अवसर सुभ सुलभ पाइ सो दुख-मेटन कौ।
पैंठि जह्नु-उर-अजिर झपदि प्रभु सौं भेटन कौ।
अति मंगल मन मानि गंग आमँद सरसानी।
निज बिस्तार समेटि अजली आनि समानी ॥४१॥

कियौ जह्नु तिहिं पान हरषि हरि-नाम उचारत।
भावी भूत कुपूत पूत निज कुल के तारत।
सुर मुनि सब तिहिं समय परम बिस्मय सौं पागे।
पर्वत-नृप-महिमा महान गुनि गावत लागे ॥४२॥

यह दुर्घट घट देखि भगीरथ निपट चकाए।
सुठि स्यंदन तैं उतरि तुरत आतुर तहँ आए।
माथ नाइ कर जोरि सकल सुर मुनि नृप बंदे।
गदगद स्वर सति भाय जह्नु सादर अभिनंदे ॥४३॥

सगर-सुतनि की कही प्रथम अति करुन-कहानी।
पुनि बिरंचि-हर-कृपा गग जासौं महि आनी।
कह्यौ भयौ अपराध घोर यह सब बिन जानैं।
अनजानत की धृक-हूक पर साधु न मानैं ॥४४॥

छोम-छलक अब छाँड़ि छमा-छादित चित कीजै।
ब्रह्म रुद्र लौं ह्वै दयाल सुरसरि सुभ दीजै।
नत निज महिमा संग गंग तुव जस जग छैहै।
धारि जाह्नवी नाम हरषि तुव सुता कहैहै ॥४५॥

दीन बचन सुनि भए सकल द्विजदेव दुखारी।
जह्नु-जोग-बल बरनि भगीरथ बात सकारी।
ह्वै प्रसन्न नब जह्नु कृपा-चितवनि सौं चाह्यौ।
अति असेम अवधेस-महात्मम-सुकृत सराह्यौ ॥४६॥

सागर-सुतनि की दुसह दसा गुनि अति दुख मान्यो।
सकल-जगत-हित माहिँ निजहिं बाधक जिय जान्यौ ।।
करुना सिंधु-तरंग तुंग इमि उर मैं बाढ़ी।
बन्यौ न राखत गंग पलटि काननि सौं काढ़ी ।।४७।।

बैसाख सुक्ल सुभ सप्तमी गंग-नाम-गौरव गह्यौ।
जब निकसि जह्नु के अंग सौं गंग जाह्नवी-पद लह्यौ ।।४८।।



उद्धव - गोपी - संवाद

भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गावँनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं।
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ।।१४·२१।।

सोई कान्ह सोई तुम सोई सबही हैं लखौ
घट-घट अन्तर अनंत स्यामघन कौं।
कहै रतनाकर न भेद-भावना सौं भरौ
बारिधि औ बूँद कै बिचारि बिछुरन कौं।
अबिचल चाहत मिलाप तौ मिलाप त्यागि
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौं।
जीव आतमा कौं परमातमा मैं लीन करौ
छीन करौ तन कौं न दीन करौ मन कौं ।।१४·२२।।

सुनि सुनि ऊधव की अकथ कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिँ थिरानी हैं।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं।
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं ॥१४·२३॥

रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के,
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन
देत ना सुदर्सन हूँ यों सुधि सिराई हैं।
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौ,
भाव क्यौं अनारिनि को भरत कन्हाई हैं।
ह्याँ तौ बिषमज्वर-बियोग की चढ़ाई यह,
पाती कौन रोग की पठावत दवाई हैं ॥१४·२४॥

ऊधौ कहौ सूधौ सो सनेस पहिलैं तो यह,
प्यारे परदेस तैं कबै धौं पग पारिहैं।
कहै रतनाकर तिहारी परि बातनि मैं,
मीड़ि हम कबलौं करेजौ मन मारिहैं।
लाइ-लाइ पाती छाती कब लौं सिरैहैं हाय,
धरि-धरि ध्यान धीर कब लगि धारिहैं।
बैननि उचारिहैं उराहनौ कबै धौं सबै,
स्याम कौ सलोनौ रूप नैननि निहारिहैं ॥१४·२५॥

षटरस-व्यंजन तौ रंजन सदा ही करैं,
ऊधौ नवनीत हूँ स-प्रीति कहूँ पावै हैं।
कहै रतनाकर बिरद तौ बखानैं सबै,
साँची कहौ केते कहि लालन लड़ावै हैं।
रतन-सिंहासन बिराजि पाकसासन लौं,
जग चहुँ पासनि तौ सासन चलावै हैं।

जाइ जमुना-तट पै कोऊ बट-छाँहि माँहि,
पांसुरी उमाहि कबौं बाँसुरी बजावै हैं ।।१४'२६।।

कान्ह-दूत कैधों ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप,
धारे प्रन फेरन को मति ब्रजबारी की।
कहै रतनाकर पै प्रीति-रीति जानत ना,
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की।
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमें भावनि ना भावना अन्यारी की।
जैहै बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की ।।१४'२७।।

रंग-रूप-रहित लखात सबही हैं हमैं,
वैसो एक और ध्याइ धीर धरिहैं कहा।
कहै रतनाकर जरी हैं बिरहानल मैं,
और अब जोति कौं जगाइ जरिहैं कहा।
राखौ धरि ऊधौ उते अलख अरूप ब्रह्म,
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं कहा।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरीं अब,
और अंग-रहित अराधि करिहैं कहा ।।१४'२८।।

सुघर सलोने स्याम सुन्दर सुजान कान्ह,
करुना-निधान के बसीठ बनि आए हौ।
प्रेम-प्रनधारी गिरधारी को सनेसौ नाहिं,
होत है सँदेस झूठ बोलत बनाए हौ।
ज्ञान-गुन गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ,
बंचक के काज पै न रंचक बराए हौ।
रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ,
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी-पठाए हौ ।।१४'२९।।

हाल कहा बूझत बिहाल परीं बाल सबै,
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।
रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबे के जोग,
सूधौ सौ संदेस याहि तू न ठहराइयौ।

औसर मिलै औ सरताज कछु पूछहिं तौ,
कहियौ कछू न दसा देखी सो सिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछू,
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ॥१४·३०॥
नंद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछू,
बात बृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ।
कहै रतनाकर कहतिं सब हा हा खाइ,
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियौ।
आँस भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वै है हाय,
ब्रज-दुख-त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।
नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस,
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ ॥१४·३१॥
ऊधौ यहै सूधौ सौ सँदेस कहि दीजौ एक,
जानति अनेक न बिबेक ब्रज-बारी हैं।
कहै रतनाकर असीम रावरी तौ छमा,
छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी है।
दीजै और ताड़न सबै जो मन भावै पर,
कीजै न दरस-रस बंचित बिचारी हैं।
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं,
जो कहै सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं ॥१४·३२॥
आए लौटि लज्जित नवाएँ नैन ऊधौ अब,
सब सुख-साधन कौ सूधौ सो जतन लै।
कहै रतनाकर गवाँए गुन गौरव औ,
गरब-गढ़ी कौ परिपूरन पतन लै।
छाए नैन नीर पीर-कसक कमाएँ उर,
दीनता अधीनता के भार सौं नतन लै।
प्रेम-रस रुचिर बिराग-तूमड़ी मैं पूरि,
ज्ञान-गूदड़ी मैं अनुराग सो रतन लै ॥१४·३३॥

●

टिप्पणी

कबीर

साखी

१.१ आपणै = अपने । द्यौं = दूँ । हाड़ी = शरीर । कै वार = कितनी बार, अनेक जन्म लिए । मानिष = मनुष्य । बार = देर, विलम्ब ।

१.२ चौसठ दीवा = ६४ कलाओं का ज्ञान । जोइ करि = जलाकर । चौदह चन्दा = चौदह विद्याओं के चंद्रमा, चौदहकलाओं के समूह से युक्त । चानिणौं = प्रकाश ।

१.३ रीझि करि = प्रसन्न होकर । प्रसंग = भेद की बात, ब्रह्म से साक्षात्कार होने का उपाय, मर्म की वात । बरस्या = वर्षा । भीजि = भींग गया ।

१.४ बुरह्या=बुरा । सुलितान=सुलितान का बिगड़ा रूप है । घट = हृदय । संचरै=उत्पन्न । मसान=श्मशान ।

१.५ कुंजा = क्रौंचपक्षी । कुरलियाँ=कूजन किया । बीछुटे=बिछुड़ गये । कौण= कौन । हवाल=स्थिति, दशा ।

१.६ रैणि=रात्रि । परभाति = प्रातः, सवेरे । सुँ = से ।

१.७ तत = तत्त्व रूप अर्थात् ब्रह्म । तन = शरीर स्थूलपक्ष । बीसर्‍या = भूल गया, नष्ट हो गया । सुंनि = शून्य में, हठयोग का उच्चतम स्थान ।

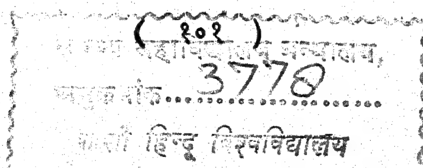
१.८ मैं = अहंकार । हरि = ब्रह्म, भगवान । अँधियारा = अज्ञान । मिटि गया=समाप्त हो गया । दीपक=ज्ञान रूपी दीपक ।

१.९ सुभर=अच्छी प्रकार से भरा हुआ, आप्लावित । मानसरोवर= (१) मानसरोवर (२) हृदय, जीव । हंस=प्राण, जीवरूपी हंस । मुकुता = मोती । अनत=अन्यत्र । चुगै = चुनना ।

१.१० खुमार=नशा । जाणिये=जानिए । मैमंता=मस्त । सार=सुधि ।

१.११ मैमंता=मदमस्त हाथी । तिण=घास, तृण । सालै=दुःख पहुँचाती है । खेह=मिट्टी ।

१.१२ केरी = की । कोठड़ी = कोठी, घर । कोट = चहारदीवारी । ओट = छाया, आश्रय ।



१.१३ साषत=शाक्त सम्प्रदाय में दीक्षित । चँडाल=अन्त्यज । अंक=गोद। मारु=माला । अंकमाल=प्रेमपूर्वक आलिंग=न ।

१.१४ षीर=दूध । आन=दूसरे । जाँणनहार=विज्ञ, जानने वाला ।

१.१५ नाँ=न तो । सक्या = सका । जोग = योग्य । ताथैं = उसी से ।

१.१६ बाणिया = बनिया । सहजि = सरलतापूर्वक । डाँड़ी=तराजू ।

१.१७ सबद=अनहद नाद । तंति = तंत्री । भरंति = भ्रम, भ्रांति । ताथैं=उससे ।

१.१८ थैं = से । मरि=मरने को । अजरावर=अजर अमर ।

१.१९ नीपजै=उत्पन्न होना । हाटि=बाजार । रुचै=अच्छा लगे । सो=वह ।

१.२० काची = कच्ची, नाशवान । काया = शरीर । अथिर=चंचल । थिर थर = कम्पित । काम करंत=काम इस शरीर को कम्पित करता है । ज्यूँ-ज्यूँ = ज्यों-ज्यों । निधड़क = निडर । काल = मृत्यु । हसंत = हसता है ।

१.२१ अणब्यावर = बिना ब्याही । ससा=खरगोश । धूँहड़ी = बाजा ।

१.२२ दुलहनीं=सौभाग्यवती नारियाँ । मंगलचार=संस्कार के मंगलमय गीत । भरतार=पति । रत=अनुरक्त । पंचतत=क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर । पाहुनें=अतिथि । भाँवरि=विवाह-परिक्रमाएँ । मैंमाती=मदमत्ता । धनि-धनि= धन्य-धन्य । कौतिग = तमाशा । कोटिक=करोड़ । मुनियर = मुनिवर । अठ्यासी=अट्ठासी ।

१.२३ नलनी=कमलिनी । कुमिलानी=कुम्हिलानी । नालि=नाल । उतपति=उत्पत्ति । तलि=तल में । उदिक=पानी, जल ।

१.२४ राह दुनौं=दोनों मजहब (हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म) । हटा=रोकने से । पारन=उपवास के बाद अन्नग्रहण । भिस्त=बिहिश्त, स्वर्ग ।

१.२५ सुनहा = श्वान, कुत्ता । मंदिल = घर (मन्दिर) । मरकट=बन्दर । बपु = शरीर । भरमते=भ्रमते, घूमते हुए ।

१.२६ नोट :—इस अवतरण में मदिरा खींचने की प्रक्रिया के रूपक द्वारा हठयोग साधना से ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग बताया गया है । उन्मनि=उन्मनी अवस्था में, उन्मत्त होकर । भव=संसार । मगन=आनन्द । अमृत=ब्रह्म रस । भाटी= भट्ठी, सुषुम्ना । नारी=नाड़ी । सुंनि=शून्य । प्रसादि=कृपा । ज्योतिहिं = ज्योति में, ब्रह्म में ।



जायसी

मानसरोदक खण्ड

२.१ देवस=दिन। कौनिउँ=कोई। मानसरोदक=(मानसर+उदक) मानसर का जल। मानसरोवर=एक तालाब का नाम। अन्हाई=स्नान-हेतु।

कोइ चम्पा कोई कुन्द सहेली। कोइ सुकेत करना रस बेलीं।

इस पंक्ति में चंपा, कुन्द, सुकेत, करना एवं रस बेली में श्लेष है। एक सखियों के पक्ष में अर्थ है, तो दूसरा फूलों के। सखियों में कोई सखी शरीर की चम्पी (चम्पा), कोई वस्त्रों की (कुन्द) करने वाली थी। कोई राजभवन में (सुकेश) पानी का प्रबन्ध करती थी (कर, नार=नारि)। सवेलीं=सबीली। सौंदर्य एवं पुष्पों की दृष्टि से कोई सखी चम्पा, कोई कुन्द, कोई केतकी, कोई करना, कोई रस बेल की भाँति थी। सुकेत-पाठान्तर। केतकि=केतकी का फूल। करना=वसन्त में खिलनेवाला श्वेत पुष्प। कोइ सुगुलाल=एक फूल। बकौरि=गुल बकावली। बकचुन=गुच्छा। बोलसरि=मौलसिरी, मौलिश्री। पुहुपावती=पुष्पयुक्त। जाही=चमेली जाति का फूल। जूही=यूथिका, एक पुष्प का नाम है। सेवती=श्वेत गुलाब।

"कोइ सु गुलाल सुदरसन राती। कोई बकौरि बकचुन बिहँसाती"
कोइ सु बोलसरि पुहुपावती। कोइ जाही जूही सेवती"

कोई सु गुलाल मलती और कोई केवल उसके दरसन में अनुरक्त थी (दसरन राती)। कोई लाल गुलाल (एकफूल) या सुदर्शन जैसी थी। कोई वाक्य चुन-चुन कर (बकचुन=गुच्छा) वाक्यावली (बकौरी) कहती और हँसती थी। कोई गुलबकावली के गुच्छों के समान विहँसती थी। कोई सुन्दर बोल कहती हुई पुष्पावली जैसी हो जाती थी अर्थात् जब वह बोलती, उसके मुँह से मानों फूल झड़ते थे। कोई उसके स्थान को जाकर देखती, और सेवा करती थी। कोई मौलिश्री की भाँति पुष्पों से लदी थी, कोई जाती और कोई यूथिका एवं सेवती के पुष्पों के समान थी।

कोई सोन जरद जेउँ केसरि। कोई सिंगारहार नागेसरि ॥

सोन जरद = सोनजर्द, (पुष्प) सोनजरद । केसरि = केसरिया रंग, केसर (वस्तु, पुष्प)। कोई सखी सोनज़रद, कोई केसर के समान थी, कोई हरसिंगार और नागकेशर जैसी थी। कोई केसरिया जरदा या चावल का भोग लगाती थी। कोई हार से शृङ्गार करने में नागमती के समान थी।

कूजा = सफेद जंगली गुलाब, । सदबरग = हजारा गेंदा, सत्य। कदम = कदम्ब, पैर।

कोई कूजा के फूल, कोई हजारा गेंदा और चमेली जैसी थीं। कोई कदम्ब या सुन्दर रस बेल जैसी थी। (सखी पक्ष में कोई सत्य के बल से चलनेवाली, चम्पा का तेल लगाकर हर्षित होती थी। कोई उसके सुन्दर चरणों के रस में पगी थी।

कँवल = कमल। कमोद = कुमुदिनी। गंध्रब = भौंरे, गन्धर्व। परिमलामोद= आनन्द देनेवाली सुगन्ध।

अलंकार—उपमा

२.२ पालि=किनारा, बाँध, भीटा। ठाढ़ी=खड़ी। रहसहिं=रास करती हैं। केली = खेल। एहि=इस। नैहर = पीहर, पितृगृह। जौ लहि= जब तक। अहै = है। गौनब = जायेंगी। काली = कल। कित = कहाँ। बोलिन्ह=व्यंग्य बातें। दारुन = दारुण, कठोर, । पिउ = पति। पिआर=प्यारा। दहुँ = पता नहीं। काह=क्या। जरम=जन्म, जीवन। जिउ=जीव या प्राण। निबाह=निर्वाह।

प्रस्तुत अवतरण में "ऐ रानीमन ···· ···· ···· निबाह" पाँच पंक्तियों तक कवि ने अप्रस्तुतविधान का सहारा लिया है। लोक को कवि ने नैहर माना है और प्राणी को दूल्हन तथा परलोक को श्वशुरगृह कहा है। पति द्वारा परमात्मा का संकेत किया है।

२.३ खोंपा=जूरा । छोरि=खोलकर । मोकराई = मुच्=मुक्त करना या खोलना (खोल दिया)। झाँपि=छिपा लिया। अरघानी=सुगन्ध। ओनए=छा गये। दिनहिं=दिन में ही। दिस्टि=दृष्टि। मकु=कदाचित्। मिसु=बहाने से। छपिगै=छिप गया। परगसा = प्रकट हुआ।

विशेष:—शृङ्गार रस। अतिशयोक्ति से युक्त उत्प्रेक्षालंकार अन्तिम दो पंक्तियों में अलौकिक सत्ता की ओर संकेत। रहस्य भावना का चित्र। उपमा, रूपक, कैतवापह्नुति एवं भ्रम।

२.४ छीपक = छपी हुई, छापे को । पैठे = प्रवेश किया । बारी = कुमारी । हुलसी=उल्लसित होकर । केली=केलि, क्रीड़ा । जाउ = प्राण । करीं = कलियाँ । करिल = काले । बिसहर = विषधर सर्प । कोंप = कोंपल । दारिवँ = दाड़िम, अनार । ओनंत = झुकी हुई । साखा = डाली । नहाइ = स्नान करती है । चाँद = पद्मावति के लिए । तारा = सखियाँ । पद्मावती रूपी चन्द्रमा सखियाँ रूपी ताराओं के साथ सरोवर में स्नान कर रही है ।

सो= वह । धनि=धन्य । उरई=उदय हुई । कत=कहाँ । कुई=कुमुदनी । नाँह=नाथ (चकवा) । दोसर=दूसरा । अलंकार=रूपक, उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान् (भ्रम) ।

२.५ लागि केलि=क्रीड़ा करने लगी । मँझ=मध्य, बीच में ।
हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा=केलि निपुण हंस लजाकर बैठ गया । बादि=बाजी । मेलि=लगाकर । हारु=हार । हारा=हार गया । पसारा= प्रारम्भ किया । लीन्हि=लिया, चयन किया । बूझि=समझ लो । पराए= दूसरे । हाथा=हाथ । बहुरि कित होई=फिर कहाँ होगा । खेल गये= खेल समाप्त होने पर । कत=कैसे, कहाँ ? रौताई=प्राप्ति, बड़प्पन । रौताई=ठकुरायत, रावतपना, मालिकपना । रौताई और कुसलखेमा लोकोक्ति है । बारि-जल । जेउ=ज्यों । फुलाएल=इत्र से सुवासित (गुलाब के साथ तिल रखा जाता है, इससे इसमें सुगन्ध आ जाती है और उससे तेल में गुलाब के इत्र की खुशबू आ जाती है) ।

अलंकार=समासोक्ति, रूपक । कवि ने संकेत रूप में सांसारिक व्यवहारों का चित्र खींचा है और प्रेम रस की प्रधानता की बात कही है ।

एक तेइँ=उनमें से एक, अकेली । चित अचेत भई=चित्त से बेसुध हो गई । डार=डाल, कमल की डंडी । गहि=पकड़कर । भै=भई । बेकरारा= व्याकुल । कासौं = किससे । पुकारौं = कहूँ । कत = क्यों । आइउँ = आयी । एहि=इनके । सैं=से (हाथों से) । पैसारू=प्रवेश । ढरे=ढलके । हेरि=खोजना । हेराई=खोजवाना । पानि=पानी, वर्षा । पौनु=पवन, आँधी । काहू=किसी के ।

२.७ मानसर का मानवीकरण किया गया है और उसकी सजीव जैसी अभिलाषाओं की अभिव्यक्ति की गयी है ।

चहा=चाहना । पारस रूप=पारसमणि के समान रूप की जिसके स्पर्श से स्वर्ण रूप की प्राप्ति हो । तेन्ह=उन । परसें—स्पर्श से ।

पावा रूप-रूप के दरसें=(अध्यात्म) जितने रूप सबको मिले हैं उसी रूप के प्रतिबिम्ब हैं । गै=गई । तपनि=गर्मी । न जनो=नहीं जानता । पौन=हवा । पुन्नि=पुण्य । भै=हुई । गवाँवा=नष्ट किया । ततखन=तत्क्षण, उसी समय । बेगि=शीघ्र । उतिराना=ऊपर आया । दसन=दाँत । जोति=ज्योति । नगहीर=इनमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव का उल्लेख है । पद्मावती बिम्ब है, उसी का प्रतिबिम्ब जगत् है अर्थात् उसी की परछाईं से संसार के अन्य सब रूप बने हैं ।

नागमती–विरह

बारहमासा

२.८ गाजा=गरजने लगे । दुंद=द्वन्द्व, दुःख । दल=समूह, सेना । बाजा=बजने लगा, आ पहुँचा । धूम=धुआँ, धुमैने । धौरे=धवल, सफेद । धाए=दौड़ना, चक्कर काटना । धुजा=ध्वजा । खरग=खड्ग । बीजु=विद्युत्, बिजली । घनघोर=कठर । भुइँ लेई=भूमि छूने लगी । ओनै=झुकी हुई । चहुँफेरी=चारों ओर । उबाहु=रक्षा करो । बेझ=वेध, तीर मारना । घट=शरीर । जीऊ=प्राण । पुख्य=पुष्य नक्षत्र, जो आर्द्रा और पुनर्वसु नक्षत्र के पश्चात् सावन कृष्ण पक्ष में लगता है । इसे अवधी प्रान्तों में चिरैया कहते हैं । नाँह=पति । गारौ=गौरव, अभिमान । बाहिरें=विदेश । सर्व=सभी ।

२.९ बरिसु=बरसता है । भरनि=भरणी नाम का नक्षत्र । पुनर्वसु=एक नक्षत्र, यह नक्षत्र आषाढ़ शुक्ल पक्ष में लगता है पर जायसी ने भ्रमवश कुछ गलत कर दिया और पुष्य को भूल से पुनर्वसु के पूर्व वर्णन कर दिया । हौं=मैं । झुरानो=सूख गई । भै=हो गई । बाउरि=पागल । सरेखा=चतुर, अश्लेषा नाम का एक नक्षत्र । रेंगि=कीड़ों का चलना । कुसुम्भी=लाल । सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला=सखियों ने अपने पति के साथ हिंडोला डाल रक्खा है । भवै=चक्कर लगाना । भँमोरा=एक पतिंगा जो बरसात में सन्ध्या समय पानी के किनारे घास पर उड़ता दिखाई देता है, यह भन-भन की आवाज करता है, इसीलिए भँभोरा कहा जाता है । ताकी=

देखते हैं। मोर नाव=मेरी नाव। बेहड़=बीहड़। ढंख=वृक्ष और झाड़ झंखाड़ आदि से युक्त।

२·१० दूभर=कठिन दुःसह। मरौं=काँटू, पूरी करूँ। मँदिल=घर (मन्दिर)। भै=हो गया। धै गै=पकड़-पकड़। पसारि=फैलाकर। तरासा=डराता है। गरासा=ग्रसित करना, खाना। मघा और पुरबा=नक्षत्रों के नाम, ये दोनों क्रमशः भाद्रपक्ष के कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष में लगते हैं। आक जवास=अर्क या मदार और जवास नामक कँटीली झाड़ी, जो वर्षा में झुलस जाती हैं। ('अर्क जवास पात बिन भयऊ'=तुलसीदास) धनि=नारी, धन्या। माँहा=महीना, मास। औगह=अगाध। टेक=सहारा, आश्रय, आलम्बन।

१·११ परभूमि=दूसरी भूमि (विदेश)। लटा=(लपटा) अनुरक्त। पलुहै=हरा-भरा होना, पल्लवित होना। उतरा चित्त=चित्त से विस्मृत, उत्तरा नक्षत्र से, चित्रा नक्षत्र के भीतर। फेरि=वापस आओ। उए=उदय। हस्ति=हाथी, हथिया (हस्त) नक्षत्र। पलानि=जीन कसकर। हस्तिघन गाजा=मेघरूपी हाथी गरजने लगे, या हस्त नक्षत्र के मेघ गरजने लगे, (हस्त नक्षत्र वर्षा की समाप्ति का सूचक होता है)। चित्रा=एक नक्षत्र। चित्रा मित मीन घर आवा=चित्रा का मित्र चन्द्रमा मीन राशि में आगया। अर्थात् चित्त के मित्र, मीन राशि में तो घर आ जाओ। अवगास=अवकाश। सदूर=शार्दूल, सिंह।

२·१२ करा=कला। अगिडाहू=आग जलना। झूमक=गीत का नाम (लोकगीत)। झूरौं=पछता रही हूँ, कष्ट पा रही हूँ। मुनिवर पूजा (सप्तर्षियों की पूजा), सौभाग्यशालिनी नारियाँ कार्तिक माह में यह पूजन करती हैं। सवति=सौत। तेहिं=इसीलिए।

२·१३ देवस = दिवस। बाढ़ी = बढ़ गयी। काढ़ी = काटना, व्यतीत करना। नाँहू = पति। बिछोई = बिछोही। सियरि = ठंढक। संदेसरा = सन्देश। तेहिक = उसी के। लाग = लग गया है। भसमंतू = भस्म कर रहा है।

२·१४ लंक दिसि = दक्षिण दिशा। सीऊ = सर्दी, शीत। सौर सुपेती = सफेद रूईदार बिस्तर या रजाई या चद्दर। जूड़ी=ठंडी। हिवंचल = हिमालय।

बूड़ी=डूबी हुई। सचान = बाज। चाँड़ा = चंड, भयंकर। भवै = चक्कर काट रहा है। ररि = रट कर।

२·१५ माँह=माघ का महीना। पहल पहल=शरीर का पहलू पहलू, अंग-अंग। हहलि = हहरना। रसमूलू = रस का मूल, वसन्तारम्भ। माहुए = माघ की झड़ी। पटोरा = रेशमी वस्त्र। गिवँ = गरदन, ग्रीवा। हरुई = हल्की। तिनुवर = तृण सदृश। झोल = राख।

२·१६ ढाँक = पलास। हुलासूं = प्रसन्नता। चाँचरि = शृङ्गारपरक स्वांग जिसमें नृत्य और गीत का आधिक्य होता है। मोहि जिय लाइ दीन्हि जसि होरी=मेरे मन में जैसे किसी ने होली जला दी हो।

२·१७ धमारी=होली का एक राग-धमार तथा धमार नामक उत्सव। लेखे=लिए। उजारी = उजाड़। पंचम = कोकिला का पंचम स्वर। पंचसर=कामदेव जिसके फूलों के पाँच बाण होते हैं। पाता=पत्ते। मीज=ताम्रवर्ण। राता=लाल। सँवरि = स्मरण कर। बनफती = वनस्पति। सोवा = सुग्गा। घिरनी परेवा=गिरहबाज कबूतर जो कि अपने जोड़े को छोड़कर क्षणभर के लिए ऊपर उड़ जाता है।

२·१८ हिवंचल ताका=सूर्य हिमालय की ओर बढ़ा। बिरह बजागि=वियोग की वज्राग्नि। सौंह=मेरे सामने। भारू=भाड़। बारू=दरवाजा, बालू। बहुरि =फिर। भूँजसि=भूनोगे। बिहराई=बिखर जाना, फट जाना। टेका=सहारा। मेरवहु = मिला दो। दवँगरा = जोर की वर्षा। छारहि = मिट्टी, राख। पलुहैं=पल्लवित होंगे।

२·१९ लुवारा=तप्त वायु। धिकै=तप्त, दहकना। हनिवंत=हनुमान। चारिहुँपवन= पुरवाहि, पछिवाँ, उत्तरहा, दखिनहा। मंदी=धीमी, मन्दो आँच बड़ी दुःसह होती है। यह आँच मन्द होने पर भी तीव्र समझी जाती है। लंका डाहि पलंका=लंका और पलंका द्वीप। पलंका=पलंग। दिनअर=सूर्य, दिनकर। मुहम्मद=मलिक-मुहम्मद जायसी।

२·२० जेठ असाढ़ी=जेठ-आषाढ़ के दिन। छाजनि=छप्पर, त्वचा का एक रोग, जिसमें बड़ी जलन होती है। तिनुवर=तिनकों का ठाट। झूरौं=सूख रही हूँ। आगरि = खजाना, अग्रिम। साँठि = पूँजी, सेंठा। मूँज = एक कास जिसका बन्धन बनाया जाता है। बंध=बन्धु। कंध=सहारा। बाक=बात। बिहूनी=रिक्त। नव=नए। बसाउ=बसाओ

२·२१ बारहमासा=बारह महीने । सहस सहस=सहस्र, सहस्र । बरिस= वर्ष । बरु=बल । सिराई=बीतता है । सोहाग=सौभाग्य । जोरु=जोड़ा पाँखि=पक्षी ।

२.२२ पुछारि=मोर, पूछने वाली । बैरिनि=दुश्मन । चिल्हवाँसू=चिड़ियों को फँसाने वाला फन्दा । हारिल=हारी हुई, हारिल एक पक्षी । धौरी= सफेद । पंडुक=पीला, एक पक्षी । लवा=लगाने वाला, एक पक्षी । मेराउ=मिलन गौरवा=गौरवपूर्ण, एक पक्षी । महरि=एक पक्षी जिसकी आवाज से 'ले दही' शब्द निकलता है । पियरि=पीली चिड़िया । तिलोरि=तेलिया मैंना । कत=क्यों । अढ़वौं=कहती हूँ । नंसा= नष्ट करता है । कट नंसा=कटनाश पक्षी । निपात=नष्ट ।

२.२३ घुँघुची=गुंजा, रत्ती । राती–लाल । सिराव=ठंडा करे । ताती= तप्त । कुंजा=क्रौञ्च पक्षी । परवर=परवल । पाक=पककर । देसरें= देश । हेवंत=हेमन्त ।



सूर

३.१ अविगति=असाधारण; अज्ञेय या अविनाशी का क्रियाकलाप । अंतर-गत=भीतर ही भीतर, हृदय मध्य । परम स्वाद=सर्वोच्च, सर्वोत्कृष्ट स्वाद । तोष=सन्तुष्टि । मन बानी को अगम अगोचर=मनसा, वाचा एवं कर्मणा सर्वथा पहुँच के परे, अदृश्य । सो जानै जो पावै=जो प्राप्त कर लेता है वही उसे समझ लेता है । बिनु आकृति=सीमा रेखाओं का वेष्टन, सत्, रज एवं तम जैसी गुणात्मक वृत्ति; जन्मना अण्डज, स्वेदज, मनुज आदि के विभिन्न भेदों, एवं नाना प्रकार की युक्तियों से रहित सर्वथा अविवेच्य । अगम=बिना सहारे के । जहाँ तक पहुँचा न जा सके ।

३.५ माधौजू=माधव, श्रीकृष्ण । गाइ=गाय । हरहाई=हरही, उच्छृङ्खल, भगोड़े स्वभाव की । हटकतहूँ=मना करने पर भी । हितकरि=दया करके सोऊ=वह भी । देहु बाँह=सहारा दो । फेरि=पलटना, विपरीत भाव रखना । निवेरि=मुक्त करना, छोड़ देना ।

३.३ भ्रमत=घूमते हुए । बास=सुबास गंध । ईसहूँ=स्वामी को भी । चीन्है=पहचान ले । सलिल=पानी । सुभाइ=स्वभाव । नाच्यौ=नाचा । भूला=भटका फिरा । चोलना=चोला, परिधान । विषय=वस्तुओं का लोभ । नूपुर=पाँवों की पैंजनी, घुँघरू । रसाल । रसमय । पखावज=मृदङ्ग । असंगति चाल=बेढंगी अटपटी । काछि=वेश विन्यास करके ।

३.५ फहरानि=उड़ने की दशा । बाना, सजधज । कच=बाल, केश । प्रन=प्रतिज्ञा । कानि=मर्यादा ।

३.६ किंकिनी=करधनी । चन्द्रिका=सिर पर चन्द्रमा के आकार का भूषण मानिक=माणिक्य । लटकन = गहने का लटकता भाग । सुदेस=सुन्दर । केहरि नख=बघनख । प्रवाल=मूँगा । पहुँची=पहुँचे में पहनने का गहना ।

अजिर=आँगन । मंडित=सुशोभित । नवनीत=मक्खन । रसना=जिह्वा । बिरति=विराग, त्याग ।

३·७ कुलही=कनटोप, बच्चों की टोपी । सुरंग=सुन्दर । रंगों से मण्डित । घन=बादल । मघवा=इन्द्र । चिकुर=बाल । बगराई=छितराए हुए । कंज=कमल । अलि अवली=भ्रमरों की पंक्तियाँ । रुनाई=ललाई । सनि=शनि । गुरु असुर=असुरों के गुरु, शुक्राचार्य । देवगुरु=देवताओं के गुरु, बृहस्पति । भौम = मङ्गल । दूध-दंत = आरम्भ के दाँत । दुति = प्रकाश बिज्जु = बिजली । छटाई = छटा । खण्डित बचन = तुतले बोल । अलप अलप जैलपाई=थोड़ा-थोड़ा बोलना ।

३·८ सींव=सीमा । लरनि = लड़ाई । बिवरनि = बिलों में । अपर = दूसरी । मेचक = काला । भूषन भरनि = गहनों से भरा पूरा । जलज-सम्पुट = कमल का पुट । धरनि=धरा, पृथ्वी । घरनि=घरवली स्त्री । किलकनि=किलकना । लरखरनि=लड़खड़ाना ।

३·९ सखा=साथी । खिसाने=क्रुद्ध । बलकि=अधिक बढ़चकढ़र । रिसाने=क्रुद्ध, खिसियाया । हलधर=बलराम । लावत=लाना । पाप=दोष ।

३·१० दाँवरी=रस्सी । बेंत=बेंत की छड़ी । ताम=क्रोध । एत=इतना । सुधानिधि=चन्द्रमा । उडगन=तारे । अवलि=पंक्ति । नंद-निकेत=नन्द का घर । न्यौछावरि=बलिहारी । हेत=प्रेम, लिए ।

३·११ बृन्दावनरेनु=वृन्दावन की धूल । धेनु=गाय । ऐनु=घर । माझ=बीच । सैनु=शयन । बालक-बच्छ=लड़के और बछड़े । बिषान=सींग का बना बाजा । बेनु=मुरली । मथि=मथकर । फेनु=फेन ।

३·१२ सुजान=अच्छे भले = आदमी । कनौड़े=अहसानमन्द । नारि नवावति=गरदन झुकाती है । फरक=फड़कती है ।

३·१३ सौंतुख=प्रत्यक्ष । जकरी=जक लगाना । चकरी=चक्की ।

३·१४ अनियारे = पैना, बाँका । सोइ संज्ञा = वही नाम । औरासी = बेढंगा । ताटंक=तरौना, कान का गहना । फँदाते=फंदे में बाँधते हुए । अंजन=आँजन । गुन–डोरी, गुण ।

३·१५ कुबिजा=कुबड़ी, कुब्जा दासी । पेखी=ठीक से देखा । दाढौ=जलाओ । कसै=कसने पर । राजी=प्रसन्न, तैयार । काजी=न्यायाधीश ।

३·१६ जामिन=रात। जुन्हैया=चाँदनी।

३·१७ मदन=कामदेव। गंडमद=कर्ण देश से बहने वाला मद। महावत=पीलवान।

३·१७ बग=बगुला। अवधि=सीमा। वेला=समय। कंचुकि=कंचुकी, चोली। ऐरावति=इन्द्र का हाथी। ब्रजपति=कृष्ण। केहरि=शेर। गरत=गलता है।

३·१८ माई=माता। बरजे=मना करता। कुमुदिनि=कुईं। तमचुर=मुरगा। बलाहक=बादल। थिर=स्थिर। जोर=जोड़। पन्नग=साँप। श्रीपति=भगवान् विष्णु। कमठ=कछुआ। तलफति=तड़पती है।

३·१९ जोग=योग। परबीन=प्रवीण, निपुण। निरगुन=निर्गुण।

३·२० पोच=क्षुद्र, निकृष्ट। बैरिनि = शत्रु। निमिष = पल। मिस = बहाना। चचल=चंचल।

३·२१ वेली=बेल, लताएँ। केली=विलास। बारे=बचपन से। बलबीर=कृष्ण। पोषी = पाला-पोसा। प्याई = पिलाया। हित = लाभ। बल्ली = लता। तमालहि = तमाल के वृक्ष में। पुष्प रस = मधु। बिलसत = विहार करती है। धीर=धैर्य।

३·२२ पुट = हल्का मेल देने वाला तरल पदार्थ। पट=कपड़ा। गहै=पकड़ना। रसहि परै = रस में पड़ता है। आँवों = आवें में घट = घड़ा। अमिय=अमृत। सत = उत्तम सैकड़ों। सर = बाण। रवि रथहिं सरै = सूरज का रथ हट जाता है।

३·२३ ठगौरी = ठगने वाली वस्तु। बिकैहै = बिकना। मूरी = मूली। मुक्ताहल=मोती। ब्यौपार = व्यापार। दाख = मुनक्का। कटुक=कणुवी। निबौरी=नीम का फल। गुन = गुण के प्रकाश से। मोही = मोह लिया है। निरगुन=निर्गुण ब्रह्म। निरबैहै = निर्वाह करेगा।

३·२४ कारे = काले। मारग = मार्ग। लोक चतुरदस विभव = चौदह लोकों का वैभव। पदुम पत्र = कमल का पत्ता। भोरि = लुब्ध करके। कुटिल = टेढ़े।

३·२५ सँभारै = सँभाले। निवारै = छोड़ना, त्यागना। नयन ते रबि····तन गारै= आँखों से बिछुड़े अब भी घूमते रहते हैं और चन्द्रमा का शरीर छोटा होता

रहता है। नाभि ··· छारै—नाभि से पृथक् होकर कमल काँटा हो गया और सागर खारा हो गया। बैन तें ··· निवारै = वाणी से पृथक् हुई सरस्वती ही प्रथम भ्रष्ट हो गई। उपचारै = दवा करे।

३·२६ परदेसी = परदेश में रहने वाले। मंदिर अरध = पाख। हरि अहार = मांस, अर्थात् महीना। बरस = वर्ष। हररिपु = कामदेव। मघपंचक = चित्त। नखत = नक्षत्र, २७। वेद = वेद, ४। ग्रह = नवग्रह, ९। (नखत बेद ग्रह का जोड़ ४० हुआ उसका आधा २० बीस (=विष, जहर होता है।)

३·२७ धाय = दासी। उबटन = बुकवा। करम = किसी किसी तरह। टेव = आदत। लड़ैतेहि = लाड़ले। लड़ैते = दुलारा।

३·२८ हंससुता = सूर्यपुत्री, यमुना। कगरी = कछार। सुरभी = गाय। बच्छ = बछड़ा। दोहनो = दुहने की क्रिया या पात्र। खरिक = चरागाह। निबाही = निर्वाह किया। रहे मौन ह्वै = चुप हो रहे।

३·२९ मँडर = चक्कर लगाना। राखै=रक्षा करना। धाम=घर-द्वार। दारू=बारूद। तड़ित = बिजली। पलीता = तोप में लगाने की बत्ती। पहरक = एक पहर में। गढ़ = किला।

३·३० बंदिजन = चारण। टोवा = शोर। धीरज पानि = धैर्य का हाथ।

३·३१ बूझति = पूछती है। बृषभानु कि भोरी = वृषभानु की भोली पुत्री अर्थात् राधा। बालापन = बचपन। जोरी = जोड़ी। अल्पबैस = छोटी उम्र। ग्रन्थित = गुणों से गूँथी हुई। बंक = बाँकी, तिरछी।



रसखानि

४·१ मानुस = शु० मनुष्य । बसु = निवास । मँझारन=मध्य, बीच । पाहन=पत्थर । पुरंदर = इन्द्र । कालिंदी-कूल = यमुना का किनारा ।

४·२ लकुटी = लकड़ी । कामरिया = कम्बल । आठहु सिद्धि = आठ सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व । नवौ निधि = नव निधियाँ (पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, कुन्द, मुकुन्द, नील, वर्च) तड़ाग = तालाब । कलधौत = स्वर्ण ।

४·३ बैन = वाणी । सानी = सनी हुई, लिप्त । सरै=सेवा करै । अनुजानी=अनुगमन करे । रसखानि = रस की खान, रसपूर्ण । रसखानि = कवि ।

४·४ सेष = शेष नाग । दिनेस = सूर्य । सुरेसहु = इन्द्र । अनादि अनन्त = जिसका आदि और अन्त न हो । नारद = प्रसिद्ध मुनि । पचि हारे = प्रयत्न कर हार जाना ।

४·५ पुरानन = प्राचीन.। गानन = सगीत में । वेद-रिचा = वेद की ऋचाएँ । टेरत हेरत = बुलाते हुए और खोजते हुए । हारि पर्यौ = निराश हो गया । पलोटत = दबाना । राधिका-पायन = राधा के पैर ।

४·६ अधरनि = होंठ । भाजन = पात्र, बर्तन । नातो = सम्बन्ध ।

४·७ काननि = कानों में । मंद = धीरे-धीरे । टेरि = पुकार कर ।
माइ = सखी ।

४·८ चहिहै = चाहेगा । निस-द्यौस = रातदिन । सौतिन = सौत । दहिहै = जलाएगी ।

४·९ सनेहन = प्रेम । सानी रहैं = डूबी रहें । नेह = प्रेम । दिवानी=मतवाली । सैन = संकेत । चैन = आराम । अघानी = संतुष्ट । अँसुवानी = आँसुओं से भरी रहें ।

४·१० माल = माला । भावतो = अच्छा लगना । स्वांग = रूप बनाना । अधरान धरी = अधरों पर रखी हुई । अधरा न धरौंगी = नीचे न रखूँगी ।

तुलसी

भरत-चरित

५·१ विबरन = शु. बिवर्ण, उदास । कृस = शु॰ कृश, दुबला, क्षीण । कनक = स्वर्ण । कलप बरबेलि = कल्पलता । बन = वन में । हनी = नष्ट की हुई । तुसारू = सं॰ तुषार, पाले से । मुरछित = शु॰ मूर्छित, संज्ञाहीन । अवनि = पृथ्वी, भूमि । झइँ = झाँई, चक्कर । कइकइ = कैकेयी । बाँझा = पुत्रहीना । अपजसभाजन = अपयश का पात्र । सरिस = सदृश, समान । जेहि लागी = जिसके कारण । सुरपुर = स्वर्ग । रघुबरकेतू = रामचन्द्रजी । अनरथ हेतू = अनर्थ अथवा अनिष्ट का कारण । धिग = शु॰ धिक्, धिक्कार है । बेनुबन = बाँस का वन । दुसह दाहु = प्रचण्ड अग्नि । मोचति = छोड़ती हुई ।

५·२ सुभाय = स्वभाव से । हिय लाए = हृदय से लगा लिया । हित = प्रेम । लखन लघु भाई = शत्रुघ्न । बच्छ = शु॰ वत्स, पुत्र । बलि = बलिहारी जाती हूँ । कुसमउ = कुसमय, बुरे दिन । जनि = नहीं, मत । गलानी = शु॰ ग्लानि, दुःख । बाम = प्रतिकूल, टेढ़ा । अजहुँ = अब भी । बिसमउ = दुःख । बलकल चीर = वल्कल वस्त्र, वृक्षों की छाल से बने वस्त्र ।

५·३ रंग = हर्ष । करि परितोषू = सान्त्वना देकर । बिपिन = वन । सत=शु॰ शत, सैकड़ों । कुलिस = शु॰ कुलिश, वज्र ।

५·४ बिलपहिं = विलाप करते हैं, रोते हैं । पुरान = शु॰ पुराण । स्रुति = शु॰ श्रुति, वेद । गाइगोंठ = गोशाला । महिसुरपुर = ब्राह्मणों का नगर । मीत = म॰ मित्र । माहुर = विष । पातक उपपातक = बड़े और छोटे पाप । मोर मत = मेरी सम्मति, सहमति । परिहरि=छोड़कर । हरिहर = विष्णु और शंकर । भूतगन घोर = भयानक प्रेतात्माएँ । जौं = यदि ।

५·५ बेचहिं बेदु = धन लेकर वेद पढ़ाते हैं। धरमु दुहि लेहं = धार्मिक कृत्यों के पाखण्ड से सांसारिक सुख-भोग प्राप्त करते हैं। पिसुन = चुगुलखोर । परदारा = दूसरे की स्त्री । ताकहिं = घात लगाते हैं। गति घोरा = दुर्गति, दुर्दशा। बंचक बिरचि बेपु = छल-कपट का रूप बनाकर। भेऊ = भेद।

५·६ प्रानहुँ ते = प्राणों से भी। प्रान = प्रिय। बिधु = चन्द्रमा। स्रवइ = टपकाए। बारिचर = जल के प्राणी। थन = शु० स्तन, पयोधर। पय = दूध। सुदेसे = सुन्दर। अवसर = स्थिति। साजु = सामग्री।

५·७ बेदबिहित = वेदों में कही गई रीति से। अन्हवावा = स्नान कराया। गहि पद = पैर पकड़ कर। सुरपुर सोपान = स्वर्ग की सीढ़ियाँ। सोधि = विचार कर। दसगात = दशगात्र। बिधाना = संस्कार। सहस-भाँति = हजार गुना। बाजि = घोड़े। बाहन = सवारी। नाना = अनेक। लहि = पाकर। भूमिसुर = ब्राह्मण। भे परिपूरन काम = इच्छा तृप्त हो गई।

५·८ पठये बोलि = बुला भेजा। सराहा = प्रशंसा की। मुनिराऊ = मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ। मगन = शु० मग्न, प्रसन्न। भावी = भवितव्य, भविष्य।

५·९ ब्यरथ = शु० व्यर्थ। बेदबिहीना = वेदों के पठन-पाठन तथा आचरण से रहित। लयलीना = शु० लवलीन, अनुरक्त। बयसु = शु० वैश्य। बिप्र अवमानी = ब्राह्मण का अपमान करने वाला। पतिबंचक = पति को धोखा देने वाली। बटु = शिष्य। परिहरई = छोड़ना। जती = शु० यति, संन्यासी। प्रपंचरत = सांसारिक झमेले में पड़ा हुआ।

५·१० बैखानस = वानप्रस्थ। भावइ = अच्छा लगे। पिसुन = चुगुलखोर। पर अपकारी = दूसरे का अकल्याण करने वाला। चारिदस = चौदहों। प्रभाऊ = शु० प्रभाव। होनिहारा=होने वाला, भवितव्यता। दिसिनाथा= दिक्पाल। सुअन = पुत्र।

५·११ बादि = व्यर्थ। तेहि लागि = उनके लिए। रजायसु करहू = आज्ञा पूर्ण करो। राय = राजा। फुर = सत्य। प्रमाना = सत्य। आग्या राखी = आज्ञा का पालन किया। साखी = सं० साक्षी। तनय = पुत्र। जजातिहि = ययाति को। (परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा

मानकर अपनी माता का शिर काट डाला था तथा पुरु ने अपने पिता ययाति को वृद्धावस्था में यौवन दान दिया था)। बयन = शु० वचन, आज्ञा । भाजन = पात्र । अमरपति अयन = स्वर्ग में ।

५·१२ अवसि = शु० अवश्य । सुकृत=पुण्य । टीका=राज्यतिलक, राज्याभिषेक । लहब = प्राप्त करेंगे । मरम तुम्हार राम कर जानहिं = जो लोग तुम्हारे और राम के प्रेम का रहस्य जानते हैं ।

५·१३ पथ्य = कल्याणकारक । आदरिअ = सम्मान करो । नरनाहू = राजा । कदराहू = दीन होते हो । अंबा = माताएँ । अवलंबा = अवलम्ब आश्रय । आयसु = आज्ञा । हियहित जनु चंदनु = हृदय को चंदन के समान शीतल करने वाले । लोचन = नेत्र । सरोरुह = कमल । देह = शरीर । सींव = सीमा । धीर धुरंधर = अत्यन्त धैर्य धारण करने वाले । अमिअ जनु बोरि = मानो अमृत में डूबे हुए ।

५·१४ नीका = भला, अच्छा । पातक = पाप । सिख = शिक्षा, उपदेश । जो आचरत = जिसके आचरण करने से । हउँ = हूँ । अनुहरत = योग्यता के अनुसार । छमब = क्षमा करना । दु:खित दोष = दुखी व्यक्ति के अपराध । बड़ =बड़ा ।

५·१५ सियपति = सीतापति, रामचन्द्रजी । कुटिलाई = कुटिलता । आन = दूसरा । बादि = व्यर्थ । बिरति = त्याग । सरुज = रोगग्रस्त । आँक = बिचार । जड़ताबस = मोह के कारण । सुअ = पुत्र ।

५·१६ पतिआहू = विश्वास करो । रसा = पृथ्वी । रसातल = पाताल । पापनिवास = पाप का निवास स्थान, पापी । अवासू = आवास, राजमहल । विषय रस रूखे = विषयों के रस से उदासीन । लोलुप = लालायित । निदरि कुलिस = बज्र से भी अधिक कठोर । अस्थि =हड्डी । (दधीचि की अस्थियों से निर्मित वज्र उन अस्थियों से अधिक कठोर होता है) ।

५·१७ कैकेई भव तनु = कैकेयी से उत्पन्न शरीर । अमरपुर = स्वर्ग । बिधवपन = वैधव्य । जठर जनमि = गर्भ से उत्पन्न । प्रजा पाँच = प्रजा के पंच । ग्रह-ग्रहीत = ग्रहों की कुदशा से प्रभावित । पुनि = फिर । बातबस = सन्निपात रोग से पीड़ित । बारुनी = मदिरा । उपचार = चिकित्सा ।

५·१८ जोगु =योग्य । बिरंचि = ब्रह्मा । सचराचर = सारे ब्रह्माण्ड में । अदिनु= बुरे दिन । दीनता = अकिंचनता, हीनता ।

५·१९ बिबेक-सागर = बुद्धि के समुद्र, प्रकांड विद्वान् । बिस्वकरबदर समाना = संसार के प्रत्येक पदार्थ हस्तगत बेर के समान सुलभ हैं । भयें बिधि बिमुख बिमुख सब कोऊ = दैव के विपरीत होने पर हर कोई विपरीत हो जाता है । पोचू = अधम, नीच । दवारी=दवाग्नि, जलन ।लाहु=लाभ । जरनि =तपन, वेदना ।

५·२० आन = अन्य । अनभल = दोषी, खोटा । उपाधी = उपद्रव । सनेह-सदन = प्रेम के घर । अरिहुक = वैरियों का भी । अनभल = बुराउ । बामा = दुष्ट, कुटिल ।

५·२१ सुधा = अमृत । बियोग बिषम बिष दागे = रामचन्द्रजी के वियोग रूपी कराल विष से दग्ध । पाँवरु = नीच । सुगाइ = लगाए । कोटिक = करोड़ों । कलप सत = सौ कल्पों तक । नरक निकेता = नरक वास । गरल = विष ।

५·२२ धुनि = शु० ध्वनि । निरनउ = शु० निर्णय ।

५·२३ बाहन = सवारी । परभात = शु० प्रभात । पयाना = प्रयाण करना । साइँ = साईं, स्वामी, रामचन्द्र जी । आरत = दुखी ।

५·२४ चक्क चक्कि = चकवा, चकई । सचिव = मंत्री । जोहारे = प्रणाम किया । नाग = हाथी । अरुन्धती = वशिष्ठ मुनि की धर्मपत्नी । अगिनि समाऊ = अग्निहोत्र की सामग्री । सिबिका = शु० शिविका, पालकी ।

५·२५ करि करिनी = हाथी हथिनी । तकि बारी = जल को देखकर । पयादेहिं= पैदल ही । कृस = शु० कृश, दुःखी । असन = भोजन ।

५·२६ बिहान = प्रातःकाल । निअराने = समीप पहुँचे । कटकाई = सेना । अकंटक = निर्द्वन्द्व । जुरहिं, जुझारा = मिलकर युद्ध करें । अमिय = अमृत । गुह = निषादराज । ग्याति सन = जातिवालों से । हथबाँसहु = पतवारों को । बोरहु = डुबा दो । तरनि=नावों को । कीजिअ घाटारोहु = घाटों को रुद्ध कर दो ।

५·२७ सँजोइल = एकत्र । ठाटहु सकल मरइ के ठाटा = सभी मरने के लिए प्रस्तुत हो जाओ । छनभंगु = शु० क्षणभंगुर । दसचारी = चौदह । मोदक = लड्डू । बिटप =वृक्ष । जननी जोबन बिटप कुठारू = माता के

यौवन रूपी वृक्ष को नष्ट करने के लिए कुल्हाड़े के समान है। उछाहु = उत्साह। सनाहु = कवच।

५·२८ रजाइ = आज्ञा। कदराइ = भयभीत हो। करषा = स्पर्धा, होड़। रारी = लड़ाई। माथी = तरकस। अँगरी = कवच। कूँड़ि = लोहे का टोप। बाँस = भाले। सेल = बर्छी। सम = सीधे। कुसल अति ओड़न खाँड़े=खड्ग के आक्रमण बचाने में चतुर। छिति=पृथ्वी। राउतहिं=राउत, राजा। बीरु = शु० वीर।

५·२९ बिनु भट बिनु घोरें = योद्धाओं और घोड़ों से रहित। मेदिनि = पृथ्वी। टोलू = यूथ, समूह। जुझाऊ ढोलू = युद्ध के ढोल। सगुनिअन्ह = शकुन विचारने वालों ने। खेत सुहाये = युद्ध की सफलता। विग्रह = युद्ध। मरम = भेद। मध्य = उदासीन।

५·३० दुरइ दुराएँ = छिपाने से नहीं छिपती। संजोवन लागे = तैयार करने लगे। पीन = भारी, बड़ी। पाठीन = रोहू मछलियाँ। स्यदनु = रथ। जोहारू = प्रणाम। महि = पृथ्वी।

५·३१ सिहाहिं = सराहना करना। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा = जिसकी छाया के स्पर्श मात्र से स्नान करना पड़ता है। परिपूरित=शु० परिपूर्ण। गाता = शरीर। जमुहाहीं = जँभाई लेते हैं। समुहाहीं = सामने होते हैं। स्वपच = शु० श्वपच। सबर = शबर, भीलों या नटों की एक जाति। खस = एक विदेशी। जमन = यवन। जड़= मूर्ख। पाँवर = नीच। कोल किरात = जंगली जातियाँ।

५·३२ अचरजु = शु० आश्चर्य। खेमा = सं० क्षेम, कुशलता। बहोरी = फिर। पेखी = देखकर।

५·३३ लोक बेद बाहेर = लोक तथा वेद की मर्यादाओं से रहित। भूषन = सम्माननीय। जोहारी = प्रणाम किया। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा = तुम्हारी कीर्ति सौ लाख वर्ष तक अक्षुण्ण रहे। सनकारे = संकेत द्वारा आदेश दिया।

५·३४ ब्रह्ममय बारि = अध्यात्म भावना से पूर्ण पवित्र जल। मज्जनु = स्नान। रेनु = शु० रेणु, रज। सुरधेनु = कामधेनु।

५·३५ डेरा = निवासस्थान। सोधु = देखभाल। चाँपि = दबाकर। सिथिल=शु० शिथिल। जुड़ाऊ = शीतल करो। सिसुपा = शीशम।

५·३६ कुस साँथरी = कुश की चटाई । प्रदच्छिन=शु० प्रदक्षिणा, फेरी लगाना । कनकबिंदु = सुनहले सितारे । स्रीहत = ऐश्वर्यहीन । पटतर = उपमा । भानुकुल भानु भुआलू = महाराज दशरथ । सिहात = प्रशंसा करते हैं। अमरावति पालू = इन्द्र । पबि = शु० पवि, वज्र ।

५·३७ लालन जोगु = प्यार करने योग्य । लोने = सुन्दर । अहहिं = हैं । तात = तप्त, गर्म । बाउ = वायु । काऊ = कभी । डासि = बिछौना ।

५·३८ जीवनतरु = जीवन मूरि, संजीवनी बूटी । जोगवइ = ध्यान रखना । फनि मनि जेहि भाँती = जिस प्रकार साँप अपनी मणि-रक्षा करता है । पदचारी = पैदल । धिग = धिक, धिक्कार । अघ उदधि = पाप का समुद्र साँइद्रोह = स्वामी अर्थात् राम के प्रति द्रोह का कारण । बादि = व्यर्थ । बावरी = पगली । निरजोसु = निश्चित ।

५·३९ परदखिना = प्रदक्षिणा । खोरि = दोष । निकामा = अत्यधिक । निबाहेउ = निर्वाह किया । बिमोह = व्यामोह, दु:ख । भिनुसार = प्रात: काल । गुदारा लागा = नाव पर नदी पार करने का कार्य आरम्भ हुआ । दण्ड चारि = चार घड़ी ।

५·४० कोतल = सजा हुआ घोड़ा । डोरिआए = घोड़े की लगाम पकड़े हुए । अनुराग=प्रेम ।

५·४१ झलका = छाले । पंकज कोस = कमल की कलियाँ । सितासित नीर = सित गंगा का जल; असित = श्यामल, यमुना का जल अर्थात् संगम । महिसुर = ब्राह्मण । त्यागि निज धरमू = क्षत्रिय वृत्ति का त्याग करके । आरत = दु:खी । कुकरमू = शु० कुकर्म । जाचक = शु० याचक, माँगने वाला । निरबानें = सं० निर्वाण, मोक्ष । आन = अन्य, दूसरा ।

५·४२ अनुदिन = निरन्तर । जलदु = बादल । सुरति = ध्यान । पाहन=पाषाण । कनकहिं = सोना ।

५·४३ बैखानस = वानप्रस्थ । बटु =ब्रह्मचारी । गृही = गृहस्थ । उदासी = संन्यासी । गिरा=वाणी, सरस्वती । मति = बुद्धि । धूति = ठग ली गई ।

५·४४ बेदु = सं० वेद । बुध = बुद्धिमान । अनरथमूला = अनर्थ की जड़ । सूला =कष्ट । अयानी = अज्ञानी । अलप = शु० अल्प ।

५·४५ भूरि-भाग = बड़भागी ।

५·४६ बिधु = चन्द्रमा । किंकर = दास, भक्त । अथइहि कबहूँ ना = कभी अस्त नहीं होगा । कोक = चकवा । तिलोक = त्रिलोक—(स्वर्ग,

मर्त्य और पाताल)। नहिं दूषा=दूषित नहीं होगा। अघाहू=तृप्ति, संतोष।

५·४७ पारसु=स्पर्श मणि। पयागा=प्रयाग।

५·४८ सपथ अवाई=शपथ खाना। कहिअ बनाई—कृत्रिम बात कही जाए तो। सर्बग्य=स० सर्वज्ञ। सतिभाऊ=सच्चे भाव से। पोचू=नीच, अधम। अजिन=मृगचर्म। डासि=बिछाकर।

५·४९ दहइ=जलाना। बासर=दिन। बसूला=बढ़ई का एक औजार जिससे लकड़ी काटी जाती है। कलि=कलह। कुकाठु=बुरी लकड़ी, बबूल से तात्पर्य है। कुजंत्रू=दुष्ट यंत्र। कुमंत्र-दुष्ट मंत्र। कुठाटु तेहि ठाटा—अहितकर साज सजाया। घालेसि सबु जगु बारह बाटा-समस्त संसार को उस कोल्हू में पेरकर नष्ट कर दिया। अतिथि-अभ्यागत। छोहु—प्रेम।

५·५० गुर गिरा-गुरु की वाणी। गरुइ-भारी। पहुँनाई—आतिथ्य। नेवता—निमंत्रण। रिधिसिधि अनिमादिक-अणिमा, लघिमा, गरिमा आदि ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ।

५·५१ अनुमानी—मानकर। अतुलित—अनुपम। बिलखाहिं बिमाना-विमान भी हतप्रभ हो जाएँ। जथारुचि—इच्छानुसार।

५·५२ बिसारहिं – भूलकर। जमी=संयमी। सची – शची, इन्द्राणी। त्रिबिध बयारी-शीतल, मंद, सुगंध वायु। स्रक—पुष्पमाल। बनितादिक—स्त्री आदि। चक—चक्रवाक। खेलवार – क्रीड़ा करने वाला, बहेलिया। भा भिनुसार—प्रातः काल हुआ।

गीतावली

५·५३ कल कीरति—सुन्दर यश। बपु—शरीर। बिरचि—विशेष रूप से रच कर। अलकैं कुटिल-घुँघराले बाल। ललित-सुन्दर। भ्रू—भौंह। जलज—कमल। सुधा—अमृत। ससि—शशि। सचु-सुख। पानि—स० पाणि, हाथ। उभय—दोनों। अंभोज—कमल। अलि—भौंरा। स्रुति रिचा—वेदमंत्र।

५·५४ नीको लागत–अच्छा लगता है । अनुरागत–प्रेम से भर उठना। सुनरेस–यशस्वी राजा । सूंगनि–चोटियाँ । आदि बराह–शूकरावतार, भगवान् । बारिधि–समुद्र । दसन–दाँत । बिराट–अखिल ब्रह्मांड का रचयिता, नियामक ।

५·५५ बर बाजि–श्रेष्ठ घोड़े । पय–दूध । कर पंकज–हाथ रूपी कमल। निपट–पूर्ण रूप से । सार करत हैं–सेवा करते हैं । हिम मारे–पाले से मारे हुए ।

५.५६ बिरह–वियोग । लोचन नीर–नेत्र-जल, अश्रु । कृपिन–शु० कृपण। कोन–कोना । बधिक–व्याध, हत्यारा । पुरातन भौन–पुराना घर । भोरेहुँ–भूल से भी । गौन–गौण, हल्की । आरत–आरति। दीन–दुःखी व्यक्तियों के दुःख का दमन करने वाले ।

५.५७ अनुसासन–शु० अनुशासन, आज्ञा । चैल-ज्यों–वस्त्र के समान। आनि–लाकर । व्यालावलि–सर्पों का समूह । महि–पृथ्वी । भेदि भुवन–पृथ्वी को फोड़कर । बाहिरो–बाहर । तावौं–बंदकर। बिबुध – बुद्धिमान । बरबस – बलपूर्वक, जबर्दस्ती । अनुग–भक्त। मीच–मृत्यु । मूषक–चूहा ।

कवितावली

५·५८ अवधेस – महाराज दशरथ । सकारे–प्रातः काल । सोच विमोचन को – सारी चिन्ताओं को दूर करने वाले को । ठगि सी रही–किंकर्त्तव्य विमूढ़-सी हो गई । जातक–बच्चा । नवनील–सरोरुह से–नए नीले कमल के समान ।

५·५९ दुति – सं० द्युति, कांति । कंज की मंजुलताई हरैं – कमल से अधिक सुन्दर हैं । सोहत – शोभित होते हैं । भूति – उत्कृष्ट । अनग–कामदेव । दमकैं–दमकती हैं । दतियाँ–छोटे छोटे दाँत । किलकैं–किलकारी मारते हैं । चारि-चार । बिहरैं–विहार करें ।

५·६० जुरि – एकत्र होकर । निहारति – देखती । कंकन – शु० कंकण । पल टारति नाहीं – क्षण भर के लिए भी सीताजी अपनी दृष्टि नहीं हटाती हैं ।

५·६१ बालधी – पूँछ । लीलिबे को – निगलने के लिए। रसना – जीभ । पसारी है – फैलाई है । कैधौं – अथवा । ब्योम-बीथिका – आकाश की गलियों में । धूमकेतु – पुच्छल तारे। उघारी है – खुली हुई है । सुरेश चाप – इन्द्रधनुष । दामिनी-कलाप – विद्युत का नृत्य। मेरु – सुमेर पर्वत । कृसानु-सरि – अग्नि की नदी । जातुधान – राक्षस । अकुलानी – व्याकुल होकर। कानन उजारयो – बन को उजाड़ दिया है। प्रजारी – प्रजा को नष्ट करेगा, जनता का वैरी ।

५·६२ राजरोग – राजयक्ष्मा, क्षयरोग। बिराट् उर – विराट् पुरुष के हृदय में। सकल सुखराँक – सब सुखों से रहित । उपचार – औषधि । बिसोक – शोकरहित । ओत – चैन । मनाक – थोड़ा । रजाय – आज्ञा । रसायनी – रसायनशास्त्र का वेत्ता। समीर सूनु – हनुमान जी। पयोधि – समुद्र। सोधि – शुद्ध करके। सरवाक – कसोरा, मिट्टी का पात्र जिसमें रखकर रस फूंके जाते हैं। बुट – बूटी। पुटपाक – दवाओं से बना गोला जो आग में फूंका जाता है। जातरूप – सोना । मृगांक – एक विशिष्ट रसौषधि, सोने की भस्म ।

५·६३ ओझरी – पेट का वह भाग जिसमें आँतें भरी रहती हैं। सेल्ही – गडा । मूँड – खोपड़ी। कोरिके – खुरच कर। जोगिनी झुटुंग–योगिनी विशेष । खोरिकै – स्नान करके। भूतनाथ – शिव। हाथ हाथ जोरि कै – एक दूसरे का हाथ पकड़ कर।

बनिज – व्यापार । चाकरी – नौकरी । सीद्यमान – दुःखित । साँकरे – संकट के अवसर पर। दारिद-दसानन – दारिद्रय रूपी रावण ने। दुनी – दुनियाँ को। दुरितदहन – पापों को भस्म करने वाले। हहा करी–बिनती करता है।

५·६५ धूत – धूर्त, प्रवंचक। अवधूत – अघोरी। सरनाम – प्रसिद्ध । गुलाम – दास, भक्त। मसीत – मस्जिद। सोइबो – सोना।



५·६६ अंब – माता। मेरिऔ सुधि द्यायबी – मेरी याद दिलाइयेगा। अघी – पापी। उदर – पेट। बिगरिऔ बनि जाइ – बिगड़ता हुआ भी बन जाएगा। हौं – मैं। बिबिधि बिधि – सब प्रकार से। अतिसय – अत्यन्त। बरजै – मना करे, रोके।

५·६७ मूढ़ता – मूर्खता, अज्ञानता। परिहरि – त्यागकर। सुरसरिता – गंगा। धूम समूह – धुएं का समूह। बारि – जल। लोचन – नेत्र। गच–छत। सेन – बाज। आतुर-आकुल होकर। अहार बस – भोजन के निमित्त। छति – हानि। आनन – मुख। दुसह – कठिन। पन – प्रण।

५·६८ अनुग्रह – कृपा। बिबुध दुरलभ – देवताओं को दुर्लभ। कोटिक – करोड़ों। विषय-बारि – भोग विलास रूपी जल। जनमत – पैदा होते। वंसी – मछली पकड़ने का कांटा। पदअंकुस – भगवान् के चरणों में अंकित अंकुश का चिह्न। स्रुति – वेद। दीन –दरिद्र। मोह-रज्जु – मोह की रस्सी।

५·६९ सून्य भीति – माया का अदृश्य आधार। चित्र – सृष्टि-प्रसार। तनु बिनु– निराकार, अव्यक्त। चितेरे – चित्रकार। रबिकर-नीर – मृग मरीचिका। दारुन – भयंकर। मकररूप – मगर के रूप में (काल)। बदनहीन–मुख-विहीन। चराचर – चर और अचर।

५·७० द्रवै – द्रवित होता है, दया करता है। सरिस – समान। जतन करि-यत्न करके। दस सिर – रावण। अरपि करि – अर्पित करके। सिवपँह – शिव से। भजु – भजो, स्मरण करो।



केशव

गणेश वंदना

६·१ मृणालनि – कमल नाल । सब काल – हर समय । कराल– भयंकर । दीह – स० दीर्घ । हठि–हठ करके । पद्मिनी – कमलिनी । पेलि – दबाकर । कलुष – स० कालुष्य, पाप । कलंक-अंक – कलंक का चिह्न । भवसीस-ससि सम – महादेव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा के समान । बपुख – शरीर । साँकरे की – संकट में पड़े हुए व्यक्ति की । साँकरन – साकल, बंधन । सनमुख होत–सामने होते ही । दशमुख– दसों दिशाओं में रहने वाले लोग, अथवा ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्योंकि ब्रह्मा–के चार मुख, विष्णु का एक मुख और शिव पञ्चमुख माने गये हैं ।

६·२ बानी – स० वाणी, सरस्वती । जगरानी – विश्व की शासिका । उदार – बड़ो । कौन की – किसकी । भई – हुई । कहि न काहू लई – किसी के द्वारा पूर्ण रूप से नहीं कही जा सकी । क्यों हूँ – किसी भी प्रकार । नई नई – नित्य नवीन ।



रामचंद्रिका-सुन्दर-कांड

हनुमान लंका-गमन

६·४ नाकपतिशत्रु – मैनाक । उदित – उठता हुआ । अंतरिच्छ – आकाश, सं० अंतरिक्ष । लच्छि – स० लक्ष्य करके, देखकर । अच्छ–स० अक्षि, आँख । पद – चरण, पैर । छुयो – स्पर्श किया । बीच–आधे मार्ग में । सुरसा – सर्पों की माता । सिंहिका–राहु की माता छायाग्राहिणी । कढ़े – निकले ।

६·५ करि दंश दसा सी – मच्छर का स्वरूप धारण करके (मसक समान रूप कपि धरो। दंश – डाँस, मच्छर। बन राजि बिलासी – वनों में विचरने वाले हनुमान जी। तिय ह्वै – स्त्री रूप धारण करके। मोहि उलंघि – मेरी अवहेलना करके।

६·७ सरल है।

६·८ थापर – थप्पड़।

६·९ धनद – कुबेर। भीनी – भींगी हुई। बर – वरदान। हरि – वानर।

६·१० दसकंठ – रावण।

रावण-शयनागार

६·११ पलका – पलंग। तरुनी – सं० तरुणी, युवतियाँ। आवझ – ताशा, वाद्य विशेष। बीन – वीणा।

६.१२ किन्नरी-किन्नरों की कन्यायें। किन्नरी – सारंगी सुरी – देव कन्यायें। आसुरी–असुर कन्यायें। यक्षिणी–यक्ष कन्यायें। पक्षिणी–सारिका, मैना। नगो कन्यका–पर्वतीय प्रदेश में रहने वाली कन्यायें। पन्नगी – नाग कन्यायें।

६.१३ हाला–मदिरा। कोक – कोकशास्त्र। सारिका–मैना। सुकी – सुग्गी। कारिका – श्लोक। कोकिला – कोकिल कंठी।

६.१४ राजशाला–राजभवन (रावण का महल)। प्रभा–सुन्दर, शोभा। ओर चौहूँ–चारों ओर। शुद्धगीता–सर्व प्रशंसित। सिसिपा– (शु० शिशिपा) शशम वृक्ष। सिंसिपामूल – शीशम के नीचे।

सीता-दर्शन

६·१५ ब्रेनी – स० वेणी। मृणाली – कमलिनी। राकसी – स० राक्षसी। दुःखदानी – दुःख देने वाली। ररैं – रटती हैं।

६·१६ पीयूष – अमृत। राहुनारीन – राहु की स्त्रियों ने।

६·१९ जीव की जौति=सच्चिदानन्द की अंश स्वरूपा, जीवात्मा। माया=अज्ञान। अविद्या = सांसारिक विषयों में लीन बुद्धि। विद्या = पारमार्थिक बुद्धि। प्रवीनी = निपुण। शंबरस्त्र न=शंबर नामक असुर की स्त्रियाँ। कामबामा= रति। राम-रामा = राम-पत्नी सीता।

६·२० दसग्रीव = रावण। दुरायो = छिपा लिया। अधोदृष्टि = नीचे दृष्टि करके।

६·२१ राम काजैं = राम के लिये। महा बावरो = अत्यन्त पागल।

६·२२ कृतघ्नी=उपकार न मानने वाला। कुदाता=कृपण, कंजूस। कुकन्याहि=दूसरे की स्त्रियों को, कुकन्याहि (पृथ्वी की पुत्री सीता को)। हितू=हितैषी। अनाथानुसारी=अनाथों को आश्रय देनेवाला, अनाथों के पीछे पीछे चलने वाला, स्वयं भी अनाथ।

६·२३ दूषै = दोष देता है। हितू = प्रेमी। निर्गुनी = गुणरहित, मूर्ख।

६·२४ अदेवी = राक्षसियाँ। नृदेवीन की = रानियों की। बानी = सरस्वती। मघोनी = इन्द्राणी। मृडानी = पार्वती। किन्नरी = किन्नरस्त्री, सारंगी।

६·२६ तनु = क्षीण। नेक = तनिक। तिच्छ = स० तीक्ष्ण। बिड़ =स० विष्ठा, मल। कन = स० कण। मच्छि = स० भक्षि, खाकर।

६·२७ विसर्पी = विषैला, फैलने वाले। आसु = स० आशु, शीघ्र ही। नास=स० नाश। निहट = पूर्णतया।

६·२८ युक्ति-छुरी = उपाय रूपी चाकू।

६·३० नाँउ = स० नाम। सियरी = शीतल। संभ्रम = भारी भ्रम। आवाल ते= बाल्यावस्था से। सुधि = स्मृति। कौन प्रभाव = किस भाँति। संत्रास = डर से (डर यह है कि रावण कोई राक्षसी माया तो नहीं रच रहा है)। अवलोकियो = देखा। नीठि = कठनाई से।

६·३४ मोतन चाहि = मेरी ओर देख। पक्ष = मेरे पक्ष वाला। पक्ष विरूप = शत्रु पक्ष का। भेद = रहस्य।

६·३६ पवनपूत = पवनपुत्र हनुमान। दशरत्थनन्द=दशरथ के पुत्र। अजतनय-चन्द=रघुवंशी अज के चन्द्रमा के समान शीतलता देने वाले पुत्र। निकेत = घर, भवन। लच्छन=सं० लक्षण। सत्त=स० शक्त, शक्तिशाली। भावत = प्रिय। श्री वसन्ति = श्रीवत्स के चिह्न से युक्त (अर्थात् नारायण के हृदय पर श्रीवत्स का चिह्न है उसी प्रकार श्री राम जी के हृदय में भी द्युतिमान चिह्न है)। न पूजैं = बराबरी नहीं कर सकते।

६·४० परतीति = विश्वास, सत् प्रतीति। हियरे = हृदय में। बहुभाई = बहुत प्रकार से।

मुद्रिका-वर्णन

६·४२ सीतकारि = शीतल करने वाली। कल = सुन्दर। कीरति = स० कीर्ति। सहित नाम = "श्री रामो जयति" नाम से युक्त। (उस अंगूठी पर "श्री रामो जयति" खुदा हुआ था)।

६·४३ अंकन = (१) शरीर, वक्षस्थल (२) अक्षर। श्री = (१) श्रीवत्स चिह्न (२) 'श्री शब्द'। अष्टापद=(१) पशु अर्थात् सिंह (२) सुवर्ण। शिवा = पार्वती (शिव की कल्याणकारिणी शक्ति)

६·४४ अच्छर =(१) ब्रह्म, अविनाशी ब्रह्म (२) लिपि अक्षर। प्रतिहारिनी = चोबदारिन। माया = (१) प्रकृति (२) धन अर्थात् स्वर्ण।

६·४५ जगभूषन = संसार के अलंकार राम। भूषन-निधान = भूषणों की मंजूषा। निजु = निश्चय ही। सीख = शिक्षा। मरम=भेद।

६·४६ सुखदा=सुख देने वाली। सिखदा=शिक्षा देने वाली। अर्थदा=धन अथवा लक्ष्य प्रदान करने वाली। यशदा = यश देने वाली। रसदातारि=आनन्द देने वाली।

६·४७ बहुवर्ण = (१) कई रंग वाली (सूर्य किरण में सात रंग होते हैं) (२) कई अक्षर वाली (अंगूठी में 'श्री रामोजयति' ये छः अक्षर लिखे थे) सहज प्रिया = साधारणतः प्रिय (सूर्य किरण भी सहज प्रिय होती है। अंगूठी भी वैसी ही होती है)। तमगुणहरा = (अंधकार हरने वाली (दुःख हरने वाली)। प्रमान = निश्चयपूर्वक। जगमारग दरसावनी = (१) सांसारिक कर्मों का मार्ग दिखलाने वाली (२) सांसारिक रीति दिखलाने वाली (पति पत्नी का परस्पर स्मरण कराकर संबंध दृढ़ करने वाली)।

६·४८ श्री = राज्य श्री। हौं = मैं। अनीति करी = धोखा दिया, त्याग दिया।

६·४९-५० सहित=हितैषी। समान = (मान सहित) स्वाभिमानी। बुद्धिवंत = हनुमन्त का विशेषण, बुद्धिमान्। कंकन = कंगन।

६·५१ दरीन = गुफायें। केसरी = सिंह। करी = हाथी। बासर की सम्पति=दिन का प्रकाश। केका = मोर का शब्द। घनस्याम = काला बादल, राम। घोरन = गरज। साकत = स० शाक्त (दुर्गा के उपासक)।

६·५२-५६ दसा = स० दशा। दीपदसा = दीपक की बत्ती। सनेह = (१) प्रेम (२) तैल। सुगति = सुन्दर गति वाली। सरसिज-योनि = ब्रह्मा।

६·५७-५८ परतीति = विश्वास। सीस की मनी = चूड़ामणि, शीशफूल। जस-पद = विजय। किंकर = सेवक। कोरि = करोड़। जंबुमाली = प्रहस्त नामक मन्त्री का पुत्र। पञ्चमन्त्रि = (१) विरूपाक्ष (२) यूपाक्ष (३) दुर्द्धर्ष (४) प्रघस (५) कर्ण। अक्षकुमार = रावण का पुत्र। इन्द्रजीत = मेघनाद। ब्रह्मअस्त्र = ब्रह्मा द्वारा दी हुई फाँस। वश्य भो = वशीभूत हुआ। मन शुद्ध कै = शुद्ध मन से, केवल राम काज हेतु (बल से या भय से हार कर नहीं)।

६·५९ त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण = त्रिशिरा, खर और दूषण नामक राक्षसों को मारने वाले। तर्‍यो = पार किया। छुई दृग = नेत्रों से स्पर्श किया अर्थात् देखा।

६·६० कोरि = करोड़। यातना = कष्ट। फोरि फोरि मारिये = इतना पीटो कि इसके सब अङ्गों से फूट फूट कर रक्त निकलने लगे। पौर = द्वार। रुंड = सिर रहित शरीर।

६·६१ रंक = निर्धन, अकिंचन, तुच्छ। छीजई = कम होती है।

६·६२ तूल = रूई। बोरि = डुबा कर। बाससी = वस्त्र। ‍राल = राल। दून सूत सों = दोहरे सूत से। कसी = कस कर बाँध दिया। बारि दी = जला दिया, आग लगा दी। जहीं = ज्योंही। तहीं = त्योंही।

६·६३ ज्वालमाल = आग की लपटें। झँझरी = छिद्र, सूराख। बाजि = घोड़े। बारन = हाथी। छुद्र = स० क्षुद्र। बिपदाहि = विपत्तियों।

६·६४ अटा = अट्टालिकाएँ। जटो=जड़ी हुई। नाग = हाथी। सेत = श्वेत। समै = समय।

६·६५ रैनचारी = निशाचर। गहे ज्योति गाढ़े = लपटों में जलती हैं। ईश = महादेव। भोरें = धोखे में।

९

६·६६ राते = रक्तिम । मलैअद्रि = मलयाचल । दावज्वाला = दावाग्नि ।

६·६७ राजरानी = रावण की स्त्रियाँ या वधुएँ । लोल=चंचल । दैत्य-जायान= राक्षसों की स्त्रियाँ ।

६·६८ लाय = आग । उच्चरुखी ह्वै = ऊँचे की ओर चढ़ कर । पघिलो=पिघल गया । गुनि = समझकर । गिरा = सरस्वती ।

६·६९ लाई = जलाया । पूरब जाम = प्रथम प्रहर ।

६·७० शुभ = कुशलपूर्वक । मनि = चिंतामणि ।

६·७१ करनी = कर्म । सिर पाय के = पैर के निकट पृथ्वी पर टेक दिया । (अति नम्र भाव से चरणों पर रख दिया ।) चिंतामणि = चिंताओं को दूर करने वाली मणि ।

६·७३ मृदुल मृणालिका = (१) कोमल कमलदण्ड (२) कमल नाल के समान कोमल बाँहें । केशरि = (१) सिंह (२) केशर । बिलान = (१) बिलों को (२) विलुप्त हो जाना (कहीं छिप जाना) । चहति = ढूँढ़ती हैं । सूरति = दशा । मूरति = शरीर ।

६·७६ हरि = वानर । ठाये हो = स्थापित किया है । बानरस = बाण की शक्ति (अमोघता) । बलीमुख = (१) वानर (२) बलियों में मुख्य । निजु = निश्चय, अपने । वेद साखामृग = वेदों की शाखाओं में विचरण करने वाले ।

६·७७ यूथ = समूह । पच्छ = स० पक्ष, पंख । पतंग = पक्षी ।

६·७९ उचकि = उछल कर । रोदसी = पृथ्वी और आकाश । बरषा ज्यों बलनि बलति है = जैसे वर्षा अपने बल (मेघों) से अति बली होती है वैसे ही आपकी सेना बली वानरों से अति बलवान् है । बलति है = बलाधिक है । पन्नग = सर्प । पतंग = पक्षी । राजि = स० राजी, पंक्ति, समूह । दलति = पीस डालती । पय = पानी । पुहुमी = पृथ्वी ।

६·८० भारत = भार से परिपूर्ण करते हैं, और बोझ डालते हैं । दचका = धक्का । दकचत = हिल जाती है । मचकत = नीचे को दबते हैं, पुन: ऊपर उठते हैं । लचकि जात = नीचे झुक जाते हैं । सेस = शेषनाग । असेस = सं० अशेष, सब । भोगवती = पृथ्वी के नीचे के लोक की पुरी । पृथ्वी के नीचे सात तहें (लोक) मानी जाती हैं जिनके नाम क्रमश: ये

हैं—(१) अतल (२) वितल (३) सुतल (४) तलातल (५) महातल (६) रसातल (७) पाताल। भोगवती पुरी 'अतल' की राजधानी है।

६'८१ कपि सागर=समुद्र के समान बानरी सेना। मेले=उतरे, ठहरे, डेरा डाला।

६'८२ भूति = अधिकता। विभूति = (१) भस्म (२) रत्न। ईश शरीर = महादेव का शरीर। बियो = दूसरा। संतत = सदा। चंदन-नीर-तरंग तरंगित = प्राचीन काल में मलयगिरि से चंदन काटकर समुद्र में फेंककर समुद्र की तरंगों द्वारा अन्यान्य देशों को लोग ले जाते थे। अतः चंदन के अनेक काष्ठखंड समुद्र में तैरते रहते थे।

६'८३ तिमिंगल = बड़े मत्स्य (जो तिमि नामक मछली को निगल जाते हैं)। छोभ = चित्त की विचलित अवस्था, चंचलता। विमोह = बड़ी बड़ी त्रुटियाँ। कोह = क्रोध। माँगनो = भिक्षुक। पाहुनो = मेहमान, अतिथि।

*

मतिराम

७·१ नेह = प्रेम । खेह = धूल ।

७·२ नागरि = चतुर स्त्री, नगरनिवासिनी । गँवारि = देहात में रहने वाली स्त्री, ग्रामीणा । धनुही = वह छोटा धनुष जिसे लड़के खेलने के लिए मुलायम लकड़ी के डंडे अथवा बांस की कइन को रस्सी से झुका कर बनाते हैं ।

७·३ नवल = नया । पानिप = कांति, ओप, शोभा, सौन्दर्य ।

७·४ निरसंक = निडर, निर्भय । अरबिंद = कमल । कलंक = दोष, धब्बा ।

७·५ मार = कामदेव । सिकार=आखेट, जगली पशुओं को मारना । पास=फंदा ।

७·६ केतक = केतकी, इसका पुष्प काँटेदार पत्तों के रूप में होता है, पर कोश में बन्द मंजरी के कारण अत्यन्त सुगंधित हो जाता है । हरशंकर—शिव ।

७·७ सुबरन = स्वर्ण, गौरवर्ण । रूपौ = चाँदी, सफेद धातु ।

७·८ बलाइ = बलाय, खेलने के प्रति अस्वीकृति । कपूर = सफेद रंग का जमा हुआ एक सुगन्धित द्रव्य जिसके स्पर्श से आँखों से पानी निकलने लगता है ।

७·९ दवाग्नि = वन में लगने वाली आग, कृष्ण ने एक बार दावाग्नि को पीकर व्रज की रक्षा की थी । गिरि = पर्वत (कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत अंगुली पर उठा लिया था) ।

७·१० कुबोल = कटुवचन । हेत = प्रेम, कारण ।

७·११ दिठौना = (डिठौना) काजल की वह बिन्दी जो बालकों को नजर से बचने के लिए उनके माथे पर लगाई जाती है । इंदु = चन्द्रमा ।

७·१२ चोरमिहचनी = आँखमिचौनी का खेल ।

७·१३ झूलनि = झूल, वह कपड़ा जो शोभा के लिए घोड़े या हाथी की पीठ पर डाला जाता है । मुकत = मोती ।

७·१४ गुलाल = एक लाल बुकनी जिसे हिन्दू होली के अवसर पर चेहरे पर मलते हैं । सरसुति = सरस्वती नदी ।

७·१५ कुन्दन = तपाया हुआ सोना। चारु = सुन्दर । गुराई = गौरवर्ण। अलसानी = आलस्य भरा। चितौन = चितवन, दृष्टि। बिलासन=विलास। सरसाई = सरसता। लहै = प्राप्त। मुसकानि = मुस्कान। खरो=निर्दोष, शोभावृद्धि। निकाई = सुन्दरता।

७·१६ हुती=थी। द्यौस = दिन। आली = सखी। दुरे=छिपे। अँखियाँ भरि आईं = आँखों में आँसू भर गए।

७·१७ निरसंक=निर्भय। तनपानिप=रूप माधुरी। तप कीजै=तपस्या की जाय।

७·१८ बनमाल=वैजयन्ती माला, पांच चीजों, तुलसी, कुन्द, मंदार, पारिजात और कमल, की बनी हुई माला। अधरारस = अधर पान, अधर अमृत।

७·१९ बिसेखी=विशेष, अधिक। सुजान = चतुर, कृष्ण। मनोभव = काम देव। उरेखी = देख पड़ना, उभरी हुई। पेखी = देखी। हियमाल = हृदय पर लटकती माला। लाल = माणिक, जो शीशे की तरह छवि ग्रहण कर लेता है।

७·२० लौने = लावण्यमय, सुन्दर। लोल=चंचल। अनंग = कामदेव। भारु = भार, बोझ। ओप=कांति, शोभा। उलहत=उत्पन्न होना, और ही शोभा का होना। उरज = पयोधर, कुच। उतंग = उठे हुए। जोबन = यौवन। झकोर=झकोरा। तरंग=लहर। पानिप=पानी, रूप-कान्ति। अमल=स्वच्छ निर्मल। काई = जल में उत्पन्न होने वाली एक महीन घास जो पानी पर छा जाती है और उसे गंदा कर देती है।

बिहारी

८·१ हरित दुति = आनन्दित ।

८·३ लाव = रस्सी, लहासी ।

८·९ गुरु=बृहस्पति । नारी=(१) स्त्री (२) राशि । रस = (१) जल (२) शृंगार रस ।

८·१२ सायक=बाण । मायक=माया करने वाले, । झख=मछली ।

८·१८ ताफता = (फा०) धूप छाँह (कपड़ा) ।

८·२२ झरसी = अधजली । झर=झार, लपट । झालरति=फैलती ।

८·२५ खौरि=ललाट का बेंड़ा टीका । पनच=कमान की डोरी, प्रत्यंचा । कानि= मर्यादा । तिलक=ललाट पर का खड़ा टीका । सुर.कि=तिलक का वह भाग जो नाक पर लगा होता है । माल=तीर की गाँसी ।

८·३१ मलंग=फकीर, योगी ।

८·३२ पगार=उथला पानी, छीलर ।

८·३६ मरगज = मलीन । मरगजे चीर=मलगजी सारी (मैली साड़ी) ।

८·३९ सबिहि=चित्र ।

८·४० कमनैती = धनुर्विद्या । जिह= (फा०) चिल्ला, प्रत्यंचा । बेझो=निशाना ।

८·४७ अकस=ईर्ष्या, विरोधी । वृषभानुजा= (१) बैल की बहिन, (२) वृषभानु की पुत्री । हलधर के बीर= (१) बैल (२) बलदाऊ के भाई ।



भूषण

९·१ पुरहूत = इन्द्र ।

९·२ कुम्भभव = अगस्त्य ।

९·३ विहद = बेहद, असीम । गैबर = गजवर, श्रेष्ठ हाथी । रलत हैं = प्रवाहित हैं । ऐल = समूह, सेना । उसलत = स्थानभ्रष्ट ।

९·४ बाने = भाले के आकार का हथियार, इसमें झंडा भी बाँध देते हैं ।

९·५ कोल = शूकर ।

९·६ कोकनद = लाल कमल ।

९·७ रैयाराव = राजा चम्पत राय का खिताब । जोम = घमंड । बंयर = बधूवर स्त्री । बगार = बलगार, दुर्गम घाटी । पगार = चहारदीवारी ।

९·८ वै संगिनी = आयु पर्यन्त साथ देने वाली ।

९·९ मयूखैं = किरणें ।

९·१० डंबर = विस्तार । उडमंडल = तारा मंडल (आकाश) । पैड पैड=पग पग पर । हरौल = सेना का अग्र भाग । दुरद=हाथी । छपद = (षट्पद) भौंरा ।

९·१२ निगोड़ी = दुष्ट । बासी = बसने वाला ।



देव

१०.१ ऊनो = घट गया। नूनो = न्यून हो गया। इंदिरा = लक्ष्मी। कुरै = उड़ेल दी गई।

१०.२ बिषै = विषय बासना। बिरुद = यश।

१०.३ निरँधार = निराधार। अगराय = आनन्दातिरेक से।

१०.४ तनुता = कृशता।

१०.५ बहरावै = अनुरंजन करते हैं।

१०.६ मल्लिका = मोतिया। आरसी = दर्पण।

१०.७ राते = आरक्त, लाल। सेल्हीं = सूत, ऊन, रेशम या बालों की माला जिसे योगी लोग गले में डालते या सिर पर लपेटते हैं।

१०.८ निगोड़ी = दुष्ट।

घन आनंद

११·१ परजन्य=(१) बादल (२) जो दूसरे के उपकार के लिए हो। जीवन=(१) जल (२) प्राण।

११·२ वारी=निछावर होती हूँ। पीठि पहिचानि दै=पहचान कर विमुख हो गये या पहचान से विमुख हो गये।

११·३ आरसी=(आदर्श) दर्पण। त्यों=ओर। पैज=प्रतिज्ञा। मलोलिहै=पछताएगा। बहरायबे=(१) बहलाने की। (२) बधिर बने रहने की।

११·४ राजिहौं=टाँका लगाऊँगी।

११·५ बाँक=वक्र। निसाँक=नि:शंक। आंक=चिह्न। मन=हृदय; ४० सेर। छटांक=थोड़ा, सेर का सोलहवाँ भाग। 'छटांक' को उलटा पढ़ने से 'कटाँछ' होता है अथवा छटा+अंक=शोभा की झलक।

११·६ लाहौ=लाभ। निबाहि=निर्वाह।

११·७ गुन=गुण, डोर। बाँधि लै=बँध हुए को। बिसास=विश्वास।

११·८ त्रसरेनु=त्रसरेणु, धूलिकण, पुराणों में सूर्य की पत्नी है। ऐन=अयन, घर।

११·९ तम=अंधकार। ई=युक्त हुई।

११·१० आस पास=आशा के फंदे में। खरे अरबरनि=अति। पत्यानि=विश्वास। न घिरत=घिरते नहीं, पकड़े नहीं मँडराते नहीं। निदान=अंत में। अधर लेगे हैं=ओठों पर प्रयान=प्रयाण।

द्विजदेव

११·१ झरसि=अधजली । झार=लपट । बिसूरति=दुखी होना ।

१२·२ केकी=मयूर । चल पलन=चंचल पलकें ।

१२·३ सुषमा = शोभा ।

१२·४ लोनों = लावण्यमय, लवणयुक्त ।

१२·५ चहूँघा = चतुर्दिक् ।

१२·६ कलिंदसुता = यमुना ।

१२·७ लरजि = बंद करना । माती = मस्त । मधुपालिनि = भौरों की पंक्ति । तरजि=डाँटना । हरजि = फटकारना ।

१२·८ जकैं=स्तब्ध ।

भारतेन्दु

१३·१ मन=कामदेव ।

१३·२ बतराति=वाग्विलास । बीरी=बीड़ा ।

१३·३ अटा=अट्टालिका । सामुहो=सम्मुख एक ही हाथ ।

१३·५ न्याव=(न्याय) उचितानुचित निर्णय । तीनहु तापै=दैहिक, दैविक और भौतिक ताप ।

१३·६ मैनबान=कामदेव का बाण । निहोरि=विनय । राधारौन=राधारमण ।

१३·७ गरुआई=गुरुता । दानधारा=हाथी की कनपटी से चूने वाले मद की धारा ।

१३·८ कल=सुन्दर । बीर=सखियाँ । अतन=अनंग, कामदेव । कहर=विपत्ति, आफत ।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

गङ्गावतरण सप्तम सर्ग

१ मारजन=पवित्र करने का मन्त्र और विधि । चित्तवृत्ति=मन की दशा। विधिवत्=विधिपूर्वक । पूरब प्रसंग=पूर्व कथा ।

२ बद्धअंजली=बँधी हुई अंजली, विनय की मुद्रा । बिनवत=विनय करते हुए। बहुरि=फिर ।

३ गुनि=जानकर । बर=श्रेष्ठ । साप-ताप=शाप की ज्वाला । नरपति = राजा (भगीरथ) । ब्रह्माण्ड=सारे संसार के स्वामी, विष्णु । संसय=शंका। ठिक ठायो=निश्चित किया ।

४ सजग = सावधान । दिगपाल = दिशाओं के रक्षक । ब्यालपति=शेषनाग। कोल=बराह । कमठ=कच्छप । भूधरनि=पर्वतों । स्वस्तिमन्त्र=कल्याणकारी मंत्र । चतुरानन=ब्रह्मा ।

५ सुरसरि = गङ्गा । धाक = आतंक । भय पागे=भय से भर उठे । सुरासुर = सुर और असुर । दहलि=भयभीत हो उठे । धावत=दौड़ते थे । दिग्गज=दिशाओं के हाथी । दन्तनि दबोचि=दाँत में दबाकर । भभरि=घबरा कर ।

६ नभमण्डल = आकाश मण्डल । थहरान = थर्रा गया । भानु रथ = सूर्य का रथ । सिगरे=सब । पौन = पवन । गौन = गमन । सकाइ = डरकर । कमलासन=ब्रह्मा ।

७ मलय = मलय पर्वत । मेरु = सुमेरु पर्वत । मंदर = मंदराचल । हहरे=काँप उठे । पषान = पाषाण । ठमकि = रुककर । ठामहि=जगह-जगह । ढहरे= प्रवाहित हुए ।

८ हरगिरि = कैलास पर्वत । हर संग = शङ्कर सहित । कंदुक इव = गेंद के समान ।

९ सुजान = चतुर। मापे = क्रोधित। सन्नद्ध = प्रस्तुत। दीरघ = दीर्घ, बड़ा।
सृङ्ग = चोटी।
१० कलित = सुन्दर। नाध्यो = बाँध्यो। नागबंध = कर्धनी।
११ उमगाइ = फुलाकर। ग्रीव = गर्दन। उचकाइ = ऊँचा करके।
१२ तमकि = क्रोधित। चंड = प्रबल। रोपे = जमाया, दृढ़ किया। धीर-धरा = धैर्य रूपी पृथ्वी।
१३ जुगल = दोनों। हुमकि — बलपूर्वक। करिहाँय = कमर। जोहन = प्रतीक्षा।
१४ सितभानु = चन्द्रमा।
१५ त्रिपुरारि = शंकर। ब्रह्मद्रव = गंगा।
१६ उमड़ि = उमड़ कर। खंडति = खंडित करती हुई। महामेघ = प्रलय के बादल।
१७ भरके = भड़क उठे। चमकि चलि = चकित होकर चले। बाहन = सवारी।
धराधर = पर्वत।
१८ कढ़ि कढ़ि = निकल निकल। बिबुध = देवता। बिबिध = विभिन्न प्रकार के।
जाननि = सवारियों पर। कौतुक = क्रीड़ा। ससंक=शंका सहित। वंक = टेढ़ा।
काननि = कानों।
१९ पौन पलट = वायु स्तर। सुरपुर = स्वर्ग। घसि = घिसते हुए। धरा दिसि = पृथ्वी की ओर।
२० जोजन = योजन। सुढार = सुन्दर ढाल। बिशद = विशाल। छद = छत।
अनाधार = बिना आधार के।
२१ मुक्ति पानिप = मोती की आभा। सौं पूरी = से पूर्ण। रूरी = सुन्दर।
ब्यालनि = सर्प। चल = चंचल। चिलक = चमक। चपला = बिजली।
२२ रजतमय = चाँदी का। बितान = तम्बू। बनितनि = स्त्रियाँ। वृन्द = समूह।
२३ आभूषण = गहने। प्रवाह = धारा। विमल = स्वच्छ। बिभाकर = चन्द्रमा।
२४ सहस = हजार। पौन = पवन। ही की रासी = हीरे की राशि अथवा ढेर।
उसावत = ओसाना।
२५ नायक = स्वामी, यहाँ चन्द्रमा से तात्पर्य है। ब्यालपास = सर्पों का बन्धन लहर रूपी नाग पाश। तारनि = तारों। आनि = लाकर।
२६ सित = सफेद। जोन्ह-छटा = चाँदनी की शोभा। हिम प्रचुर-पटा = बर्फ के विस्तृत पट। लुरति = मुड़ती हुई। दीप दाम = दीपों की माला।
२७ बपु = शरीर। डटति = स्थिर होती हुई। सटति = सटती हुई। कलित = सुन्दर।

२८ अनूप = अनूठा। बिलग = अलग-अलग। बहुरि = फिर। आतम बल = आत्मबल।

२९ उच्छलत = उछलते हुए। गाजि = गरज कर। कागदी = कागजी। कपोत = कबूतर। गोत = समूह।

३० पौन-नट = पवन रूपी नट। निपुन = निपुण। गौन = गमन। कंदुक = गेंद। सरद-बादर = जाड़े के बादल। उलहत = एक होना। अवहेलना = फैलना।

३१ बिचलित = विचलित होकर। बंक गति = टेढ़ी चाल। सेस = शेष नाग। सित-बेस = सफेद वेश। मुकतनि = मोती। छीर-निधि = क्षीर सागर।

३२ सुताड़ित = अच्छी तरह विश्रृङ्खलित। उदेग = उद्वेग। पोत = जहाज। हिंडोरे = झूला।

३३ फाब = फौव्वारा। फबति = सुन्दर लगना। झीन = हलका। तरनि = सूर्य। दिसि = दिशाएँ।

३४ दिगंगना = दिशा रूपी स्त्रियों। गङ्गागम-पथ = गङ्गा के आने का मार्ग। नीकी = सुन्दर। पटापटी की = रेशमी वस्त्रों की।

३५ धावति = दौड़ती हुई। ढरति = ढुलकती हुई। सुरपुर = सुरलोक। सुगम = सरल। निसेनी = सीढ़ी। उमगाई = उमड़कर। हरहराति = 'हर हर' का तीव्र स्वर करती हुई।

३६ छवि-छकित = कान्ति से आत्मविभोर होकर। हर रूप = शंकर का सौन्दर्य। चोप = प्रेम। रोष-रुखाई = क्रोध की शुष्कता।

३७ छोम चलक = स्नेह की अधिकता से। थहरन = स्थिरता। विघटि = घटकर। सुरट = सुन्दर स्वर। उघटी = उत्पन्न हुई।

३८ भ्रू भंक भाव = भौंहों को टेढ़ा करने का भाव अर्थात् क्रोध का भाव। भव-निदरत = संसार का निरादर। हरन = आकर्षण।

३९ सुजान = चतुर। ठाम = स्थान। जटाजूटहिमकूट = जटा बाल रूप हिमाचल का श्रेणियाँ।

४० ईस = शङ्कर। सीस परस = सिर का स्पर्श। ठायौ = निश्चित किया।

४१ जटा-गह्वर-बनवीथिन = जटाओं की गुफा रूपी वन की गलियों में। निसीथिन = रात्रि में। संवत्सर = शताब्दी।

४२ सुरसरि = गङ्गा। अवनि तल = पृथ्वी-तल।

●

अष्टम सर्ग

१ बरद = वर देनेवाले। उनइ = उठा कर। पानि = हाथ।

२ दरन = दलने वाले। दंद = द्वन्द्व। तरुणादित्य = तरुण + आदित्य = पूर्ण सूर्य। बरुनालय = समुद्र।

३ व्यापक = सब जगह फैला हुआ। रहित = बिना।

४ सुरासुर = सुर और असुर। पैंज-प्रमान = प्रतिज्ञा की प्रामाणिकता।

५ सुरसरि-बर-बारी = गंगा की श्रेष्ठ धारा। धरनी-सुखैं-साली = पृथ्वी का आनन्द देनेवाली।

६ दिन-दानी = निरंतर दान देनवाले। सुभ-अंग = मंगलमय अंगोंवाली। सुख सागर-संगिनी = आनन्द सागर में साथ रहनेवाली। दुरित-भय-भंग = पापों के भय को नष्ट करनेवाली। तरल-तुंङ्ग-तरंगिनि = चंचल और ऊँची लहरों वाली।

७ अकथ = अवर्णनीय। आगम = आगमन। सुगम-करन हित = सरल करने के लिए। अगम = दुर्गम। परम पथ = मुक्ति। ठहरायो = स्थिर किया। उतरन आतंक = उतरने का भय।

८ सुजस-कहानी = सुन्दर कीर्ति की कहानी।

९ निधि रूरी = सुन्दर कोष। सुजस = सुन्दर कीर्ति।

१० दाप = दर्प, अभिमान। ताप = दुःख, संताप। महि-महिमा = पृथ्वी की गरिमा। चाव = लगन। उचाको = ऊँचा करो।

११ गिरा = वाणी। न्यारी = अलग। मढ़ि है = सुशोभित होना।

१२ गहि = पकड़कर। जटा सटा = जटाओं का जाल। छोर = किनारा। सोत = स्रोत। धरा = पृथ्वी।

१३ नलिनी = कमलिनी। ह्लादिनी = आह्लादित करने वाली। नीत = लाई हुई। प्राची-प्रसादिनी = पूर्व दिशा को प्रसन्न करने वाली। सुचच्छ = दर्शनीय। बलसंत्र = शक्तिशाली। भूपति-गुन-गीता = राजा भगीरथ के गुणों की गाथा।

१४ भुवाल = राजा। आरत-अधीन = दुःख के वश में। उच्चारी = कहा।

१५ ब्रह्मा-संपति-सार = ब्रह्मा की संपति का तत्व। ब्रह्मद्रव = ब्रह्मा के कमण्डल से निकली हुई धारा। महेश-मन-हरनि = शंकर के मन को आकृष्ट करनेवाली। दरनि-दुःख-दंद-उपद्रव = दुःख द्वन्द्व और उपद्रवों का दमन करनेवाली।

१६ बक्र = टेढ़ा । सक्र-सदन = इन्द्र का भवन । निसेनी = सीढ़ी ।

१७ कृपा-अवलंब = दया का सहारा । त्र्यंबकगुन = शंकर का गुण । सारि = दूर करके ।

१८ निदेस = निवेदन । गारिनी = नष्ट करनेवाली । जम-गन-दाप = यम गणों का अभिमान ।

१९ स्यंदन = रथ । सृंगनि सिरनि = पर्वत श्रेणियों के ऊपर । ढावति = गिराती हुई । ढहरावति = ढहरती हुई ।

२० हिम-कलित = बर्फ से सुन्दर । चन्द्रकांत-चट्टान = चन्द्रकान्त शिला (जिस पर चन्द्रमा की किरणों के पड़ने से जल प्रवाहित होता है) ।

२१ दमकत = चमकते हैं । करतार = विधाता । सेत = उज्ज्वल । तार-वाने की सारी = तार की बूटियों से युक्त साड़ी ।

२२ गालनि = बड़े छिद्र । रध्रजालनि = छोटे-छोटे छिद्र समूहों में । उरध = ऊपर ।

२३ अटूट = निरन्तर प्रवाहित होनेवाली । हिमकूट = बर्फ का ढेर । तुंड = चोटी भुसुंड = धड़ का ऊपरी भाग, मस्तक । छिति = पृथ्वी ।

२४ बिहाई = छोड़कर । पाहन-पथ = पर्वतीय मार्ग । फांदति = कूदती हुई । सृङ्गनि = चोटियों पर ।

२५ ढाहे = गिराये । दुकाये = छिप कर । अवरोधति = रोकती है । सोधति = इच्छा अनुसार नियन्त्रित करना । कतराई = बचकर । बक्र = टेढ़ा । जलपूर = जल के स्थान । कूल = किनारा ।

२६ बिस्तर = समतल । बारि-बिस्तार = जल का फैलाव । लघु-गुरु = छोटी और बड़ी । वीचि = लहर । छंद-प्रस्तार = छन्द का फैलाव । दिग-दंती-दत-दिव्य-दीरघ-पाटी = दिशाओं के हाथी के दाँत के दिव्य तथा दीर्घस्तर । [illegible]ारि = यादकर भूप-जस-रूप = राजा भगीरथ के यश का स्वरूप ।

२७ मीचि = समाकर । बिरद = बिरुदावली, यशोगान । दम = घमंड ।

२८ हर-हार = शिवजी की मालायें । सरिस = समान । निकरति = निकलती है । निगरति = निगलती है ।

२९ गह्वर = गम्भीर गुफा । दूमति = कंपित करती हुई । घूँसी = तीव्रता से घुसती हुई ।

३० गुह्यक = गुफा में रहने वाले । हरबरात = घबराते हैं । दुरत = छिपते हैं । जुरत = मिलते हैं ।

३१ आघ = घात । बितुण्ड = हाथी । भुसुंडनि = धड़ ।

३२ चौकड़ी = हरिणों की छलांग । दररनि = घाटियों में । कदराये = भयभीत होते हुए । प्लवंग = बन्दर ।

३३ वारी = पानी । कुठारी = कुठार । दुरित जूह = पापों के समूह । मनमरकी = संयमित ।

३४ त्रिताप = तीन ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) । ब्यजन = पंखा ।

३५ दररनि = दरार । कंदरनि = गुफाओं । सक्र = इन्द्र ।

३६ गंगोतरी = गंगोत्री, हिमालय का वह स्थान जहाँ से गंगा निकली हैं। चन्द्रिका = चाँदनी । छिति = पृथ्वी । बक समूह = बगुलों का झुण्ड । गोति = गोता लगाकर । फबि = शोभा ।

३७ अविकल = निरन्तर, स्थिर । जापी = जाप करनेवाले । भूरि = असीम । अनुराग = प्रेम ।

३८ कौतुकिहि = क्रीड़ा । उर = हृदय । धृति = धैर्य ।

३९ अन्तर-लोक = हृदय-धाम । गोलोक-बिहारी = भगवान् विष्णु । सफरनि = मछली । मिसि = बहाने ।

४० दुःख-मेटन = दुःख को मिटाने के लिए । जह्नु-उर-अजिर = जह्नु ऋषि के हृदयरूपी आँगन में ।

४१ पर्वत-नृप-महिमा = पर्वतराज की महिमा ।

४२ दुर्घट = दुर्घटना । घट = घटते, होते । चकाए = चकित हो गए । स्यंदन = रथ । अभिनन्दे = अभिनन्दन किया ।

४३ चूक-हूक = त्रुटि की कसक ।

४४ छोभ = क्षोभ, क्रोध । छमा-छादित = क्षमा से पूर्ण ।

४५ द्विज = ब्राह्मण । सकारी = स्वीकार किया । असेस = पूर्ण ।

४६ दुसह = कठिन । तुङ्ग = ऊँची । काननि = कानों । काढ़ी = निकाला ।

४७ अंग = शरीर ।

उद्धव-गोपी संवाद

१४·२१ मनभावन = श्रीकृष्ण । पावन = पाना । गुवालिनि = ग्वालिनियाँ । झौरि-झौरि = झुण्ड के झुण्ड । नंद पौरि = नन्द के द्वार पर । पदे-कंजनि = चरणरूपी कमल । पंजनि = पंजा । पेखि पेखि = देख-देखकर । छोहनि = प्रेम से ।

१४·२२ घट=शरीर। बारिधि=समुद्र। अविचल=निरन्तर। जोग-जुगती=योग की युक्तियों द्वारा। छीन=सं० क्षीण, दुबला-पतला।

१४·२३ अकथ=अकथ्य, न कहने योग्य। थहराती=काँपने लगना। थान=शु० स्थान। थिरानी=स्तम्भित होना। रिसानी=क्रोधित होना। बररानि=बड़बड़ाना। बिलखानी=बेचैन होना। बिकलानी=दु:खी होना। बिथकानी=शिथिल होना। सेद-सानी=पसीने से सनी हुई। दृग-पानी=नेत्रों के अश्रु। मुरझानी=चक्कर खाकर गिरना। बिललानी=बिलखती हैं। सुखानी हैं=उदास होकर बैठ गई हैं।

१४·२४ उपचार=दवा। सुदर्शन=भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन, सुदर्शन नामक जड़ी। नारिनि=स्त्रियाँ, गोपिकाएँ। अनारिनि=अरसिकों। विषम ज्वर=वियोग का ज्वर, (टाईफाईड)।

१४·२५ सूधो=सीधे से। सनेस=सन्देश। पग पारिहैं=आयेंगे। मीड़ि=दबाकर। मन मारिहैं=इच्छाओं का शमन करना। सिरैहैं=सान्त्वना प्राप्त करना। उराहनो=उलाहना।

१४·२६ षटरस व्यंजन=षट्रस पकवानों का समूह। रंजन=प्रसन्न आस्वादन। नवनीत=मक्खन। सप्रीति=प्रेम सहित। बिरद=बड़ाई। लालन लड़ावैं हैं=लाड़-प्यार करते हैं। पाकसा सन=इन्द्र। लौं=समान। पाँसुरी उमाहि=पसलियों को फुलाकर।

१४·२७ मति=बुद्धि। ब्रजबारी=ब्रज की स्त्रियाँ। प्रीति-रीति=प्रेम का व्यवहार। अनीति=नीतिहीन सिद्धान्त। अनारी=अनाड़ी। अन्यारी=एकतत्व। बारिधिता=समुद्र की विशालता। बूँदता=बूँद की सत्ता।

१४·२८ रंग-रूपरहित=रंग तथा रूप के बिना। लखात=दिखाई पड़ना। जरी हैं=जल चुकी हैं। बिरहानल = बिरह+अनल, वियोगाग्नि। अलख सं० अलक्ष्य। सरिहैं = पूरा होना। अनंग = कामदेव। साधि = साधना कर। साध = अभिलषित उद्देश्य। अंगरहित = शरीर के बिना। अराधि = ध्यान कर के।

१४·२९ सुघर = सुन्दर। बसीठ = दूत। सनैसो = शु० सन्देश। अंदेसौ = शंका। फूले फिरो = प्रसन्न होते हो। बंचक = शठ, धूर्त। रंचक = किंचित् मात्र भी। रसिक-सिरोमनि = श्रीकृष्ण। कूर-कूबरी पठाए हौ=क्रूर कूबरी ने तुम्हें सिखा-पढ़ा कर भेजा है।

१४·३० हाल=दशा। बूझत=पूछते हो। बिहाल=व्याकुल। बाल=बालाएँ, गोपियाँ। द्वैक=दो-एक। औसर=अवसर। सरताज=श्रीकृष्ण। कराहि=कराह कर। अवगाहि=बहाकर। कछू=कुछ। चाहि=इच्छा करते हुए भी।

१४·३१ वृषभान-भौन=वृषभान के घर की अर्थात् राधा की। जनि=मत। हा हा खाइ=बिलख कर। परपंचनि=शु० प्रपंच। रंच=किंचित् मात्र। पसीजियौ=दुःखी होना। व्रज-दुःख त्रास=व्रज के दुःख से दुखी। तातैं=गरम। राम राम कहना—अन्तिम प्रणाम।

१४·३२ सूधौ सौं=सीधे से। बिवेक=बुद्धि। रावरी=आप की। छमता=शु० क्षमता, शक्ति। ताजन=दण्ड। दरस-रस-वंचित=दर्शन के रस से दूर। सलज्ज=लज्जा से युक्त। निरलज्ज=बिना लज्जा के। परिचारिका=सेविका।

१४·३३ नवाए नैन=नेत्रों को झुकाए हुए। सूधौ सौं=सीधे से। जतन लै=यत्नपूर्वक। गरब-गढ़ी=गर्वरूपी गढ़। परिपूरन-पतन=पूर्ण रूप से पतनोन्मुख होकर। पीर कसक कमाए उर=हृदय में पीड़ा की कसक लिए हुए। नतन लै=दबना। बिराग-तूमड़ी=त्यागरूपी तूमड़ी। अनुराग सौ रतन लै—अनुरागरूपी रत्नों को लेकर।

